लोकोक्ति और मुहावरा

स्वरूप-विश्लेषण

डॉ॰ सूर्यप्रकाश

लोकोक्ति और मुहावरा

स्वरूप-विश्लेषण

डॉ॰ सूर्यप्रकाश

प्रकाशक
लोक प्रकाशन, नई दिल्ली-110009

संस्करण
प्रथम, 1990

लोकोक्ति और मुहावरा : स्वरूप-विश्लेषण

प्रकाशक
लोक प्रकाशन
39-डी, पुरानी गुप्ता कॉलोनी
नई दिल्ली-110009

लोक प्रकाशन नई दिल्ली के द्वारा प्रकाशित एव हरिकृष्ण प्रिंटर्स, शाहदरा दिल्ली-32 में मुद्रित। आवरण सज्जा श्री चेतनदास तथा आवरण मुद्रण गणेश प्रेस, गाधीनगर दिल्ली-31 द्वारा।

मूल्य
60 00 रुपये

मातृदेव-पितृदेव को सश्रद्ध...

विषय-अनुक्रम

लोकोक्ति स्वरूप विश्लेषण / 17-54

लोकोक्ति विमर्श
लोकोक्ति के समानार्थक शब्द
लोकोक्ति की परिभाषा एव रूप-सरचना—सक्षिप्तता, सारगर्भितता सप्राणता, लोकप्रियता मानवीय अनुभव एव उनकी सत्यता, लोकोक्ति की कुछ अन्य विशेषताए एव परिभाषाए। लोकोक्ति और लौकिक न्याय। लोकोक्ति और कहावत। लोकोक्ति और पहेली। लोकोक्ति और अलकार, लोकोक्ति और प्राज्ञोक्ति अथवा सूक्ति।

मुहावरा स्वरूप विश्लेषण / 55-96

मुहावरे की परिभाषा एव रूप-सरचना
मुहावरा एव रोजमर्रा (बोलचाल)
मुहावरा एव सयुक्त क्रिया
लोकोक्ति एव मुहावरे मे साम्य वैषम्य
लोकोक्ति एव मुहावरे का क्षेत्र
लोकोक्ति एव मुहावरे का महत्त्व

सदर्भ सकेत / 97 114

पूर्व पीठिका

मानव-जीवन के सभी पक्षो को सूत्र रूप मे व्याख्यायित करने वाले, जन-जन के कण्ठ पर विरजित लोकोक्तिया और मुहावरे लोक-जीवन के न्यायशास्त्र, लोकाचरण की आचार-सहिता, लोक-मान्यताओ के मानक कोश तथा मानव-समाज की मनीषा है, जिनका चमत्कार पूर्ण प्रयोग अभिव्यक्ति-कौशल के रूप मे परम्परामुक्त रूप से होता है। लोकोक्तियो एव मुहावरो का प्रयोग प्राय दो क्षेत्रो मे स्वीकृत है—क जन साधारण, ख साहित्य। इसमे मानव-जीवन के सुख-दु ख, हर्ष-विषाद, ईर्ष्या-लोभ, रुचि-अरुचि, प्रेम-घृणा, राग-द्वेष, समर्थन-विरोध, सफलता-असफलता, उन्नति-अवनति, मूर्खतापूर्ण-विद्वत्तापूर्ण व्यापारो के अतिरिक्त रीति-रिवाज, मनन-चिन्तन, आचार-विचार, तथा आर्थिक-धार्मिक, राजनैतिक, सामाजिक, सास्कृतिक जीवन आदि की सफल अभिव्यजना होती है। मानव-जीवन से सम्बन्ध रखने वाला शायद ही कोई ऐसा विभाग हो जो इनके क्षेत्र मे न आया हो। यही कारण है कि लोकोक्तिया एव मुहावरे वाणी के भृगार बनकर जहा लोक-साहित्य मे अपना प्रभुत्व स्थापित करने में सफल हुए हैं, वहां अभिजात अथवा शिष्ट साहित्य मे भी साहित्यकारो द्वारा सम्पूजित हुए हैं। भावपूर्ण प्रसगो की उद्‌भावना के अवसर पर वाग्मितायुक्त इन भगिमापूर्ण, विदग्ध, भावप्रेरित एव भावानुमोदित लोकोक्तियो एव मुहावरो के प्रयोग से साहित्य मे जो सौन्दर्य प्रस्फुटित हुआ है, वह सर्वथा आकर्षक एव विलक्षण होने के कारण अधिकाधिक प्रभावशाली बनकर सहृदय के चित्त को चमत्कृत कर देता है। वस्तुत लोकोक्तिया व मुहावरे साहित्य-रत्नाकर की बहुमूल्य रत्नावलि हैं, जिनसे सुसज्जित होकर साहित्य अपूर्व वैभव-सम्पन्न बन जाता है।

'लोकोक्ति और मुहावरा . स्वरूप-विश्लेषण' नामक इस पुस्तक मे विभिन्न कोशकारो एव विद्वानो—विशेषत. सम्बन्धित विषय पर शोध-कार्य करने वाले शोध-कर्त्ताओ की एतद्‌विषयक मान्यताओ का समुचित परिशीलन कर लोकोक्ति एव मुहावरे के स्वरूप को स्पष्ट किया गया है। इसमे प्रथम लोकोक्ति शब्द का अर्थ स्पष्ट करते हुए लोकोक्ति के समानार्थक प्रयुक्त शब्दो, विभिन्न परिभाषाओ तथा प्रमुख तत्त्वो का विवेचन किया गया है। लोकोक्ति की कतिपय विशेषताओ—सक्षिप्तता, सारगर्भितता, सप्राणता एव लोकप्रियता मे मूल रूप मे ट्रेंच ने प्रथम तीन गुणो को और उसके बाद हेस्टिंग्स ने चतुर्थ तत्त्व के रूप मे लोकप्रियता को अनिवार्य तत्त्व स्वीकार किया है। इन तत्त्वो के अतिरिक्त मानवीय अनुभव और उनकी सत्यता, प्रसगानुकूल उपयुक्तता, सरलता, उपयोगिता,

तुक-साम्य आदि विशेषताओ पर विचार किया गया है। लोकोक्ति के समानान्तर प्रयुक्त शब्दो मे—लौकिक न्याय, कहावत, प्रहेलिका, अलकार तथा प्राज्ञोक्ति के साथ साम्य-वैषम्य प्रतिपादित कर लोकोक्ति के स्वतन्त्र अस्तित्व की पहचान करायी है।

'मुहावरा' अरबी भाषा का शब्द है जो फारसी के माध्यम से हिन्दी मे आया है। 'गयासुल्लुगात', 'फरहग आसफिया' तथा 'लुगात किश्वरी' आदि फारसी कोशो के अतिरिक्त अनेक हिन्दी-अग्रेजी कोशकारो तथा अन्य विद्वानो के मतो की समीक्षा कर इसको परिभाषाबद्ध किया गया है। मुहावरे का प्रहेलिका, सुभाषित, लौकिक न्याय, दृष्टकूट आदि के साथ भी पर्याप्त साम्य-वैषम्य है। इसी प्रकार कुछ चलते क्रियापदो को मुहावरा समझने का भ्रम हो जाता है, अत युग्मक क्रिया अथवा सयुक्त क्रिया के साथ तुलना करके इस भ्रम का निवारण किया गया है।

लोकोक्ति एव मुहावरे मे पर्याप्त साम्य होने पर भी अत्यधिक वैषम्य है। रूपात्मकता, अर्थ-विधान, प्रयोजन एव प्रयोग आदि के निरूपण द्वारा इनमे परस्पर पार्थक्य स्थापित किया गया है।

अन्तत इसके अनन्तर इनके क्षेत्र एव महत्त्व पर प्रकाश डाला गया है। साहित्य के उभय क्षेत्रो, लोकसाहित्य व अभिजातसाहित्य मे अपना वर्चस्व स्थापित करने मे सफल लोकोक्ति और मुहावरे का महत्त्वाकन भी क्षेत्र की भाति द्विविध रूपो मे किया गया है—

क लोक-वाणी के श्रृगार के रूप मे, इनकी लोक-ख्याति के आधार पर।

ख काव्य-भाषा के अलकार के रूप मे, इनकी साहित्यिक उपयोगिता के आधार पर।

अन्त मे मैं उन सभी विद्वानो एव शोध-कर्त्ताओ के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करना अपना कर्त्तव्य समझता हू जिनकी ज्ञान-राशि का उपयोग इस पुस्तक को तैयार करने मे किया गया है।

इस पुस्तक के लेखन-मुद्रण मे त्रुटियो का रह जाना स्वाभाविक है। यह भी सम्भव है कि इस विषय पर कार्य करने वाले कुछ शोध-कर्त्ताओ के नाम सूचनादि के अभाव मे छूट गए हो। ऐसी स्थिति मे मेरा निवेदन है कि इसे मेरी असमर्थता व अनवधानता समझकर भविष्य मे इसके सशोधन-परिवर्धन के लिए तत्सम्बन्धी सूचना व सुझाव देकर उपकृत करेंगे। इस पुस्तक मे स्थापित तथ्यो से यदि किसी विद्वद्वर्य की स्थापना को अन-जाने ठेस पहुची हो, तो उसके लिए क्षमा चाहूगा। हिन्दी जगत् मे लोकोक्ति और मुहावरे को मान्य स्वरूप प्रदान करने मे यह पुस्तक उपयोगी सिद्ध होगी और इसका समुचित आदर होगा—इस आशा के साथ यह पुस्तक पाठको की सेवा मे प्रस्तुत है।

हिन्दी-विभाग,
हसराज कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय,
दिल्ली—110007

—सूर्यप्रकाश

आमुख

डॉ० सूर्यप्रकाश कृत 'लोकोक्ति और मुहावरा : स्वरूप-विश्लेषण' अपने ढंग का एक मौलिक एव अनूठा कार्य है। लेखक ने पहले 'लोकोक्ति' के स्वरूप पर विचार किया है। इस विवेचन को कई आयामो मे विभक्त किया गया है। जैसे—सर्वप्रथम 1 'लोकोक्ति' शब्द की विशद व्याख्या 2. लोकोक्ति के लक्षण निर्धारक तत्त्व 3 समान विधाओ से अन्तर। 'लोकोक्ति-विमर्श' के रूप मे लेखक ने विशेष सदाशयता से काम लिया है। लोकोक्ति' शब्द' 'लोक + उक्ति' इन दो शब्दो से मिलकर बना है। इस सम्बन्ध मे प्रस्तुत ग्रन्थ मे सर्वप्रथम 'सस्कृत लोकोक्ति सग्रह' मे व्यक्त 'लोकोक्ति' का शाब्दिक अर्थ प्रस्तुत किया है—लोकोक्ति : लोक कल्याणाय उक्ति, लोक प्रचलिता उक्ति। इस कथन मे समस्त पदमूलक लोकोक्ति शब्द का विभक्तिमूलक अर्थ व्यक्त किया गया है। प्रथम अर्थ के अनुसार 'लोकोक्ति' शब्द स्पष्ट रूप से कथन की उपयोगिता पर प्रकाश डालता है और द्वितीय अर्थ मे उस उपयोगिता का परिणाम स्वीकृत किया गया है। इस विमर्श का आशय यह है कि जो उक्ति लोक-कल्याणकारक होगी वही अपनी उपयोगिता के कारण लोक मे प्रसिद्ध होगी। यहाँ ये दोनो ही विवक्षाए एक-दूसरे की पूरक हैं। इनमे चोली-दामन का साथ है। ये एक ही सिक्के के दो पहलू हैं जो 'गिरा अरथ जल बीचि सम कहि-यत भिन्न न भिन्न' की ध्वनि से प्रपूरित हैं। लेखक ने अपने इस ग्रन्थ मे 'लोक तथा 'उक्ति' का भी विशद विवेचन किया है। 'लोक' शब्द का सामान्यत: समाज, या लोग अर्थ बहुचर्चित है। 'लोकोक्ति' के सदर्भ मे यही अर्थ ग्रहण किया जाता है। 'उक्ति' के लिए 'कथन' शब्द का व्यवहार निरन्तर होता है। और लोकोक्ति के सदर्भ मे यही अर्थ सर्वग्राह्य है। फिर भी अध्यवसाय सूझ-बूझ तथा विशुद्धता की दृष्टि से यह विवेचन उपयुक्त है।

शाब्दिक विमर्श के पश्चात् लेखक ने लोकोक्ति के पारिभाषिक तत्त्वो का विश्लेपण किया है। इस विश्लेपण मे लेखक की सग्रहात्मक दृष्टि प्रस्फुटित होती दिखाई देती है। और लेखक ने लोकोक्ति के स्वरूप-निर्धारक तत्त्वो का एक अच्छा कोश तैयार कर दिया है।

लोकोक्ति का लक्षण निर्धारित करते समय लेखक ने सर्वप्रथम कुछ विद्वानो के मतो का उल्लेख किया है। ये सभी मत यूरोपीय भाषाओ के हिन्दी-रूपान्तर के रूप मे प्रस्तुत किये गए है। कतिपय उदाहरणो को यहा उद्धृत करना समीचीन है—

"ससार की समस्त सद्भावनाए लोकोक्तियो मे निहित होती हैं।"
"लोकोक्तिया अनुभवो की सतति हैं।"
"लोकोक्तिया ज्ञान का पथ हैं।"

"प्रत्येक लोकोक्ति सत्य होती है।"

"लोकवाणी ईश्वरीय वाणी होती है।"

इन मतो मे यह स्पष्ट है कि विद्वानो ने 'लोकोक्ति' के तत्त्वो का 'स्वान्त-सुखाय' निरूपण किया है। परन्तु इस पृथक् व्यावृत्ति मे ही लोकोक्ति का समष्टि-विधान निहित है। ये सभी मत बिखरे हुए मोती हैं जिन्हे एकत्र करके क्रमबद्ध- रूप मे पिरोना ही तो लेखक का कार्य है। उपर्युक्त परिभाषाओ मे लोकोक्ति के तात्त्विक स्वरूप का प्रतिपादन भिन्न-भिन्न विशेषताओ के आधार पर किया गया है। लेखक का यह मत गहन एव सचिन्त्य है, क्योकि इन सभी परिभाषाओ मे लोकोक्ति के तत्त्वो का विशद निरूपण है। कुछ विश्लेषणात्मक तत्त्व-शृखला इस प्रकार हैं।

1 लोकोक्ति मे सार्वभौम सत्य विद्यमान रहता है।

2 अनुभव या लोकानुभव लोकोक्ति मात्र का अनिवार्य तत्त्व है।

3. लोकोक्ति 'ज्ञान' का साधन है। वह आप्त वाक्य प्रकरण भी होती है। इन सभी परिभाषाओ को मिलाकर लोकोक्ति की परिभाषा करें तो वह इस प्रकार होगी— "लोकोक्ति—लोकानुभव-प्रसूत लोक जीवन से सम्बद्ध सार्वभौम सत्य पर आधारित आप्त वाक्य या आप्तवाक्यवत् होती है।" इस प्रकार लोकोक्ति के निम्नलिखित तत्त्वो का निर्धारण होता है।

1 सार्वभौम सत्य 2 लोकानुभव 3 आप्तता।

प्रस्तुत ग्रन्थ मे आगे चलकर लोकोक्ति के तत्त्वो पर भी विचार किया गया है और विद्वानो के प्रचलित मतो का आधार लेकर आगे बढते हुए इन तत्त्वो का उल्लेख भी किया है—

"सक्षिप्तता, सारगर्भितता, सप्राणता, लोकप्रियता, प्रसगानुकूल उपयुक्तता, पुष्टि अथवा विरोध, सरलता, उपयोगिता, पूर्णवाक्य या वाक्य समूह, तुकसाम्य, अप्रस्तुत प्रयोग, वैचित्र्य, प्रकृति का गम्भीर निरीक्षण, घटना या कहानी से सम्बद्धता, समाज-नीति, धर्म, व्यवहार, शिक्षा, उपदेश, विश्वास, रीति, ज्ञान आदि की विद्यमानता।"

इन तत्त्वो के देखने से तो ऐसा लगता है जैसे ब्रह्माड का समस्त ज्ञान, विज्ञान शिक्षा, नीति और धर्मादि लोकोक्ति के वामनाकार मे ही समाहित हो गये हैं। यह यथार्थ भी है क्योकि लोकोक्ति का विषय-क्षेत्र बडा ही विस्तृत है; परन्तु इन विषयात्मक तत्त्वो को ग्रहण करने का आधार एक ही है—लोकानुभव अर्थात् लोकस्यानुभव, क्योकि लोकोक्ति का विषय वही बनता है जो 'लोकानुभव'पर आधारित हो—"उक्ति कागद की लेखी नही आखो की देखी हो।" अत लोकानुभव ही लोकोक्ति का प्रधान विषय है और उसी मे "अक्षयवट के बालक के उदर की भाति" साकार विश्व का समस्त आकार समाहित है। इस प्रकार लोकोक्ति के विषय-तत्त्व के रूप मे समग्र रूप से लोकानुभव को ही ग्रहण किया जाता है। लेखक ने यहा लोकोक्ति के विषय-तत्त्व के रूप में अपनी धारणा को केन्द्रीभूत एव व्यवस्थित करने में सफलता प्राप्त की है। लोकोक्ति के अन्य तत्त्वों मे सक्षिप्तता, सारगर्भितता तथा सप्राणता भी लोकोक्ति के अनिवार्य तत्त्व हैं। लोकप्रियता भी लोकोक्ति का महत्त्वपूर्ण तत्त्व है, परन्तु मेरी सम्मति मे यह अनिवार्य नही

है, क्योंकि हिन्दी साहित्य मे असख्य उक्तिया ऐसी हैं जिनमे लोकोक्ति के सभी अनिवार्य गुण विद्यमान हैं परन्तु वे प्रचलित नहीं हैं। लोकप्रियता के सम्बन्ध मे मत इस प्रकार व्यक्त किया गया है—

"लोकोक्तिया लोक प्रचलित होती हैं। बिना लोक-प्रसिद्धि और लोक-मान्यता के कोई भी उक्ति चाहे वह सारगर्भित हो या सक्षिप्त हो, लोकोक्ति हो ही नही सकती। जो उक्तिया लोक प्रचलित नही होती, वे प्राज्ञोक्तिया आदि कही जाती हैं क्योंकि वे सामान्य लोकवाणी से दूर रहती हैं।"

यह मत "सूरसाहित्य मे प्रयुक्त लोकोक्तियो का अध्ययन" नामक ग्रन्थ से उद्धृत किया गया है जिसके लेखक डॉ० लक्ष्मीनारायण शर्मा हैं। इसके आगे जो मत है वह लेखक का स्वय का ज्ञात होता है इसका भी अवलोकन यहा वाछनीय है—

"लोकमान्य एव लोकविश्रुत होकर ही लोकोक्ति पूर्णता को प्राप्त करती है। लोकोक्ति के अन्य तत्त्वो मे सक्षिप्तता—सारगर्भितता आदि की भूमिका, इसके निर्माण मे गौण रूप मे होती है, लोक स्वीकृति से ही लोकोक्ति का आत्म तत्त्व सिद्ध होता है।"

इस प्रकार लेखक ने लोकप्रियता, को ही लोकोक्ति का एक मात्र अनिवार्य तत्त्व स्वीकार किया है। इस धारणा से ज्ञात होता है कि स्वय लेखक तथा सदर्भित डॉ० लक्ष्मीनारायण शर्मा लोकप्रियता को प्राय आवश्यक मानकर चले हैं। परन्तु देखना यह है कि सूर साहित्य हो या अष्टछाप, तुलसी-साहित्य हो या कबीर-वाणी, जहा भी सक्षिप्त, सरल, सारगर्भित, सजीव, लोकानुभव पर आधारित, लोक जीवन से सम्बद्ध सार्वभौम सत्य को उद्घाटित करने वाली, महान् पुरुषो की अमरवाणी-रूप उपयोगी और प्रेरणा-दायक उक्तिया हमे साहित्य मे मिलती हैं उनमें किंचित्मात्र ही लोक प्रचलित होती है, परन्तु फिर भी वे लोकोक्तिया हैं। उन्हें लोकोक्तियो की कोटि से नही निकाला जा सकता—जैसे—

"तू कहता कागद की लेखी, मैं कहता आखो की देखी॥"
"हिन्दू कहै मोहि राम पियारा तुरक कहै रहमाना।
कबीर लडि-लडि दोऊ मरे-मरम न काहू जाना॥"
"बकरी पाती खाति है ताकी काढी खाल।
जे नर बकरी खात है तिनके कौन हवाल॥"
"प्रभुजी मेरे औगुन चित न धरो।"
"सूरदास तीन्यो नहि उपजे धनिया, धान, कुम्हेडो।"
"ऊधो मन माने की बात।"
"धीरज धरम मित्र अरु नारी। आपद काल परखि यह चारी॥"
"दुष्ट सग नहि देइ विधाता॥"
"सठ सुधरहि सत सगति पाई।"
"दया धरम को मूल है, पाप मूल अभिमान।
तुलसी दया न छोडिये जब लगि घट मे प्रान॥"

उपर्युक्त सभी उक्तिया साहित्य की हैं और जन सामान्य मे प्रचलित भी नही हैं। इनका प्रयोग केवल साहित्य के विद्यार्थी और अध्यापक ही उद्धरण के रूप मे करते हैं, परन्तु इन्हें लोकोक्ति के रूप मे मानने से भी कोई इनकार नही कर सकता। इसका कारण क्या है ? यही कि इन उक्तियो मे लोकोक्ति से सभी अनिवार्य तत्त्व, जैसे—सक्षिप्तता, सारगर्भिता, सजीवता, सरलता, उपयोगिता, प्रेरणादायकता, लोकानुभव तथा लोकजीवन से सम्बद्ध सत्य विद्यमान हैं। अत: लोकोक्ति का एक मात्र तत्त्व लोक प्रचलन ही नही है। लोकोक्ति का कलेवर तो उसके उपर्युक्त तत्त्वो के सयुग से ही निर्मित होता है—चाहे वह उक्ति लोक-प्रचलित हो या नही। इससे लोकोक्ति के स्वरूप पर कोई प्रभाव नही पडता। लोक की दृष्टि मे आते ही जो उक्ति सुगन्ध और शौर्य की भाति तुरन्त समाज के मन-मानस मे विहरित होने लगती है, वही लोकोक्ति होती है।

'तुक साम्य' लोकोक्ति का कोई अपरिहार्य तत्त्व नही है। यह तो सरलता का ही एक अशमात्र है। प्रसगानुकूल उपयुक्तता उसकी उपयोगिता मे ही निहित रहती है। अप्रस्तुत विधान, उक्ति वैचित्र्य सजीवता के ही द्योतक हैं। इस प्रकार लोकोक्ति के स्वरूप-निर्माण मे जो अनिवार्य तत्त्व विद्यमान रहते हैं—वे इस प्रकार हैं—

लोक-जीवन से सम्बद्ध सत्य, लोकोक्ति का विषय होता है। लोकानुभव विषय को स्वीकार करने का साधन है। सारगर्भितता, सजीवता उपयोगिता और प्रेरणादायकता लोकोक्ति के गुण हैं। पुष्टि और विरोध लोकोक्ति की प्रवृत्ति है। सक्षिप्तता इसकी शैली और सरलता लोक-प्रसिद्धि का मूल आधार है। इस प्रकार जहा ये सभी तत्त्व समवेत रूप मे उपस्थित हो जाते हैं वही लोकोक्ति का निर्माण हो जाता है—चाहे वह ज्ञात हो या अज्ञात।

लोकोक्ति के सम्बन्ध मे एक यह धारणा भी अकाट्य रूप मे व्याप्त है कि लोकोक्ति बिना लेखक की रचना होती है अथवा इसके निर्माता का पता नही होता। लेखक ने भी यह तत्त्व अपने विवेचन मे लिया है। ट्रैंच का यह कहना सर्वथा अनुचित है कि लोकोक्तियो का लेखक ज्ञात ही नही होता। लेखक ने इस दृष्टि से इनके दो विभाग किए हैं—ज्ञातनामा तथा अज्ञातनामा। ज्ञातनामा लोकोक्तियो के रचयिता का नाम प्रयोक्ता को ज्ञात होता है। अनेक साहित्यकारो द्वारा प्रयुक्त लोकोक्तिया उन्ही के नाम से ज्ञात होती हैं। लेखक का यह मत सर्वथा स्वीकार्य है।

अन्त मे प्रसगानुकूल लोकोक्ति के स्वरूप-विवेचन-सम्बन्धी तीसरे चरण पर भी विचार कर लेना चाहिए, जहा लेखक ने लोकोक्ति की समानान्तर विधाओ से उसकी समता-विषमता का प्रश्न उठाया है—

सर्वप्रथम लोकोक्ति और लौकिक न्याय के सम्बन्ध मे विचार किया गया है। लौकिक न्याय कोई पृथक् से विधा नही है। वह तो एक विषय है जो लोकानुभव-प्रसूत होता है। अत लौकिक न्याय अर्थात् लोक जीवन से सम्बद्ध सत्य जो लोकानुभव-प्रसूत होता है—लौकिक न्याय कहलाता है और यह लोकोक्ति का विषय हो सकता है। यदि लौकिक न्याय (लोक-सत्य) को सक्षिप्तता आदि सभी तत्त्वो के साथ प्रयुक्त किया जाता है तो वह भी लोकोक्ति की कोटि मे आ जाता है। प० रामनरेश त्रिपाठी ने लौकिक

न्याय और लोकोक्ति मे जो अभिन्नता स्वीकार की है, उसका आधार वे ही सूत्र या उक्तिया हैं जिनमे लोकोक्ति के सभी अनिवार्य तत्त्व विद्यमान हैं और 'लौकिक सत्य' जिसका विषय है। लेखक ने इस सम्बन्ध मे अपना सुस्पष्ट मत ही व्यक्त किया है। अत यहा प्रणेता की दृष्टि वस्तुस्थिति का सम्यक् अवलोकन करती हुई चली है।

लोकोक्ति और कहावत प्रसग मे भी लेखक ने पूर्ण विवेकशीलता का परिचय दिया है। विभिन्न विद्वानो के मत-मतान्तरो का विश्लेषण करते हुए लेखक इस निश्चय पर पहुँचने मे सफल हुआ है कि—"लोकोक्ति कहावत का समानार्थक शब्द है।" यह धारणा सही है और श्लाघ्य भी।

लोकोक्ति और पहेली ऐसी विधाए हैं जो प्रचलन मे अपनी पूर्ण समानता रखती है। यहा तक कि पहेली लोकोक्ति से अधिक प्रचलित देखी जाती है, परन्तु सक्षिप्तता, सार गर्भितता, मार्मिकता, प्रेरणादायकता आदि गुणो का अभाव रहने के कारण पहेली को लोकोक्ति नही माना जा सकता। लेखक ने इस तथ्य को पूर्ण स्पष्टता के साथ अभिव्यक्त किया है—लोकोक्ति पहेली से भिन्न विधा है।

लेखक ने लोकोक्ति एव अलकारो के साम्य-वैषम्य के प्रश्न को भी उठाया है। परन्तु अलकार कोई विधा नही है, वह तो काव्य-सौन्दर्य के उद्भावक साधन है और लोकोक्ति, लोकप्रेरणा पर आधारित होने के कारण साध्य है। अत लोकोक्तियो मे अधिक प्रयोग उन्ही अलकारो का मिलता है, जो लोक जीवन से सम्बद्ध सत्य को उद्-घाटित करके लोक-प्रेरणा का आधार बन जाते हैं—इस प्रकार के अलकारो मे—असगति, विरोधाभास, व्यतिरेक, अर्थान्तरन्यास, विभावना विशेषोक्ति—तुल्ययोगिता, दीपक, दृष्टान्त, उदाहरण, प्रतिवस्तूपमा, निदर्शना तथा अन्योक्ति आदि को लिया जा सकता है। किसी-किसी विद्वान् ने 'लोकोक्ति अलकार' का भी उल्लेख किया है परन्तु यह उपयुक्त नही, भ्रामक ही है। लेखक ने इस स्थिति को भी स्पष्ट कर दिया है कि लोकोक्तिमात्र को एक अलकार विधा के रूप मे स्वीकार नही किया जा सकता।

अन्त मे लेखक ने लोकोक्ति एव प्राज्ञोक्ति अथवा सूक्ति के साम्य-वैषम्य पर विचार करते हुए यह मत स्थिर किया है—

"निष्कर्षत कहा जा सकता है कि सूक्तियो (प्राज्ञोक्तियो) एव लोकोक्तियो मे भिन्नता का आधार प्रचलन है। प्राज्ञोक्तिया जहा प्राज्ञो द्वारा निर्मित होकर शास्त्रो अथवा विद्वद् समुदाय मे ही सम्मानित रहती हैं, वहा लोकोक्तियां लोकप्रिय होकर देश-देशान्तर तक भ्रमण करती हुई सार्वदेशिक सम्पत्ति बन जाती हैं।"

मेरी सम्मति मे लोकोक्तियो और सूक्तियो के साम्य-वैषम्य की विवक्षा करते हुए यदि सूक्ष्म एव गहन दृष्टि से देखा जाय तो लोकोक्ति और सूक्ति मे कोई भेद नही है जिस प्रकार लोकोक्ति और कहावत मे कोई भेद नही है। केवल प्रचलन के आधार पर ही लोकोक्ति और सूक्ति को पृथक् नही किया जा सकता, यदि किसी उक्ति में लोकोक्ति के निर्धारित अनिवार्य तत्त्व विद्यमान है। जिस प्रकार मानव-समाज एक है, चाहे उसकी जातिया और स्थितिया भिन्न हैं, उसी प्रकार लोकोक्ति→कहावत→सूक्ति भी एक ही है। इनमे जो भिन्नता आभासित होती है वह परिहार्य है, अपरिहार्य नही।

लोकोक्ति के स्वरूप पर विशद् रूप से विचार कर लेने के पश्चात् लेखक ने मुहावरे के स्वरूप पर भी विचार किया है। मुहावरे का स्वरूप विशेष विवादास्पद नही रहा है। कही-कही यह देखने मे आता है कि 'लोकोक्ति कोशो' मे मुहावरे को और 'मुहावरा कोशो' मे लोकोक्तियो को रख दिया गया है। यहा इस भ्रान्ति का निराकरण भी आवश्यक है। मुहावरा एक वाक्याश होता है जो 'ना' प्रत्यय से जुडा रहता है। मुहावरे मे लक्षणा और व्यजना अनिवार्य रूप से विद्यमान रहती है मुहावरे का विषय लोकोक्ति की भाति व्यापक न होकर केवल कोई भाव होता है, जिसे व्यग्य कहते हैं। मुहावरे मे इस व्यग्य का चमत्कारी रूप सजोकर रक्खा जाता है। इस प्रकार मुहावरा चमत्कार, सजीवता, रोचकता, मार्मिकता, गभीरता, सक्षिप्तता एव प्रेरणादायकता मे लोकोक्ति के समान ही होता है, परन्तु वह लोकोक्ति की भाति पूर्णवाक्य न होकर वाक्याश ही होता है। प्रस्तुत पुस्तक मे लेखक ने मुहावरे के स्वरूप को निर्धारित करने के लिये देश और विदेश के सभी विद्वानो के मतो को प्रस्तुत किया है। इस दृष्टि से लेखक का प्रयत्न अवश्य ही सराहनीय है।

प्रस्तुत ग्रन्थ मे लोकोक्ति एव मुहावरे के क्षेत्र निर्धारण का प्रयास भी किया गया है। वस्तुस्थिति यह है कि लोकोक्ति का क्षेत्र अत्यधिक व्यापक है और मुहावरे का सीमित। लोकोक्ति का विषय—इतिहास-पुराण, ज्ञान विज्ञान, प्रकृति-सामाजिक व्यवहार और क्रियाए, सभ्यता तथा सस्कृति के सभी प्रधान रूपो जैसे—धर्म दर्शन, जीवन दर्शन, नीति आदि सभी विषयो का लोकानुभव-प्रसूत रूप पुष्टि और विरोध के रूप मे सन्निहित रहता है। मुहावरे का क्षेत्र प्राणियो के अगादि तथा क्रिया भावादि तक ही सीमित रहता है। अत क्षेत्र की दृष्टि से लोकोक्ति मुहावरे से बहुत आगे हैं। इस क्षेत्र-सम्बन्धी विवेचन को हम लोकोक्तियो और मुहावरो के वर्गीकरण के रूप मे ले सकते हैं।

अन्त मे लोकोक्ति एव मुहावरे के महत्त्व पर प्रकाश भी डाला गया है। लोकोक्तिया समाज के हाईकोर्ट की नजीरें होती हैं और मुहावरे विष मे बुझे हुए व्यग्यबाण, जो अपनी सफल चोटो से हृदय को झकझोर देते हैं। महत्ता की दृष्टि से लोकोक्तिया और मुहावरे प्राय समान ही हैं। इनके सम्बन्ध म "को बड छोट कहत अपराधू" की ही स्थिति है। अत विवेचनोपरात यह सिद्ध हो जाता है कि लोकोक्तिया और मुहावरे केवल लोक-साहित्य की ही विधाए नही हैं अपितु सत्साहित्य की भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विधाए हैं क्योकि सत्साहित्य म भी जो जीवन-ज्योति प्रज्वलित दिखाई देती है, उनका स्रोत ये लोकोक्तिया और मुहावरे ही हैं।

निष्कर्षत यह कहने मे मुझे अत्यधिक हर्ष हो रहा है कि लेखक ने लोकोक्ति और मुहावरो के स्वरूप विवेचन मे जो विवेकशीलता प्रदर्शित की है, उससे अध्येता-वर्ग को इन विधाओ का सम्यक् परिचय मिल सकेगा। मेरा विश्वास है कि यह कृति इस विषय की एक महत्त्वपूर्ण कडी के रूप मे विद्वद्समाज मे अवश्य समादृत होगी। अन्त मे मैं इस पुस्तक के प्रकाशन पर मागलिक कामनाओ के साथ लेखक को साधुवाद देता हू।

करोडीमल कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली—110007

मदनलाल शर्मा
एम० ए० (हिन्दी-सस्कृत),
पी-एच० डी०, डी० लिट्०
हिन्दी विभाग

लोकोक्ति : स्वरूप-विवेचन

लोकोक्ति-विमर्श

'लोकोक्ति' शब्द में मध्यम पदलोपी समास है, यथा लोक कल्याणाय उक्ति लोकोक्तिः अथवा लोक प्रचलिता उक्ति लोकोक्ति।[1] 'लोक' शब्द नानार्थक है। यह अनेकविध निष्पन्न हुआ है। 'लोकृ' धातु आत्मनेपदी है जिसका वर्तमानकालिक शब्दरूप संस्कृत में लोकते बनता है। स्वार्थ मे णिच होने पर 'लोकृ' धातु का परस्मैपद मे लोकयति शब्दरूप निष्पन्न होता है। उक्त शब्दरूपो के अतिरिक्त भावार्थ मे आत्मनेपद मे लोक्यते शब्द भी बनता है। लोक शब्द का अर्थ स्पष्ट करने के लिए 'लोक्यतेऽसौ इति लोक' अर्थात् दिखाई देने वाले के लिए लोक की संज्ञा से अभिहित किया गया है। 'लोक' शब्द से घञ् प्रत्यय करने पर 'लोक' शब्द की निष्पत्ति होती है। 'कविकल्पद्रुम' मे 'लोकृ' धातु भृश् ईक्ष अर्थ मे प्रयुक्त हुई है जिसका अर्थ दर्शन है[2] तथा एवं अन्य पुरुष एकवचन रूप लोकते होता है। स्पष्ट है कि 'लोक' शब्द का अर्थ है देखने वाला। अत वह समस्त जन समुदाय जो इस कार्य को करता है, लोक कहलाता है।[3]

'उक्ति' शब्द वच् व्यक्तायां वाचि धातु मे उत्तरकृदन्त क्तिन् प्रत्यय के योग से व को उ सम्प्रसारण होने पर निष्पन्न हुआ है। इसके दो अर्थ स्वीकृत हैं—(1) भाषा तथा (2) कथन।[4] इन दोनों में द्वितीय अर्थ ही प्राय विश्रुत है। इस प्रकार लोकोक्ति का शाब्दिक अर्थ हुआ लोक प्रसिद्ध अथवा लोक-प्रचलित उक्ति।

शब्दकोषो मे 'लोक' के अनेक अर्थ प्राप्त होते हैं। इनमे से साधारणत दो अर्थ विशेष प्रचलित हैं एक तो वह जिससे इहलोक, परलोक अथवा त्रिलोक का ज्ञान होता है। वर्तमान प्रसग मे यह अर्थ अभीष्ट नही। दूसरा अर्थ लोक का होता है—जन-सामान्य। इसी का हिन्दी रूप लोग है। इसी अर्थ का वाचक 'लोक' शब्द साहित्य का विशेषण है, किन्तु इतने से लोक का वह अभिप्राय प्रकट नही हो पाता, जो साहित्य के विशेषण के रूप मे वह प्रदान करता है।[5] अमरकोषकार ने लोक का विवेचन भूतल जगत् तथा अधोलोक के अन्तर्गत किया है। नानार्थ वर्ग के अन्तर्गत लोक के भुवन तथा जन दो अर्थ किए हैं। भुवनार्थक लोक की संख्या परिगणन की दृष्टि से अमरकोषकार ने तीन तथा सात लोको की चर्चा की है। शब्दकल्पद्रुम मे भी सप्तलोको की चर्चा है।[6] हिन्दी शब्दसागर मे लोक

शब्द के 15 अर्थ किए गए हैं—स्थान-विशेष, ससार, निवास-स्थान, प्रदेश, लोग, समाज, प्राणी, यश, दृश्य, प्रकाश, 6 या 14 की सख्या, निज स्वरूप, फज, भोग्य वस्तु तथा नेत्र।[7] हिन्दी शब्दसागर ने इन अर्थों का उल्लेख करते हुए यद्यपि यह भी बताने का प्रयत्न किया है कि इनका उल्लेख अमुक-अमुक स्थलो पर हुआ है, तथापि इनमे अनेक अर्थ लोक मान्य न हो सके। मुख्यतया पूर्व विवेचित दो अर्थ ही मान्य हुए हैं।

प्रयोग की दृष्टि मे 'लोक' शब्द अत्यन्त प्राचीन है। ऋग्वेद मे अनेक स्थलो पर इसका प्रयोग हुआ है। वहा यह शब्द जन और स्थान के समानार्थी भाव का द्योतक है। ऋग्वेद के एक सूक्त मे व्यवहृत लोक शब्द स्पष्टत उभय अर्थछविया प्रस्तुत करता है—

नाभ्या आसीदन्तरिक्ष शीर्ष्णो द्यौ समवर्तत।
पदभ्या भूमिर्दिश श्रोत्रात्तथा लोका अकल्पयन् ॥[8]

यहा सृष्ट्युत्पत्ति के वर्णन मे लोक शब्द स्थान तथा जीवो का वाचक है। वैदिक साहित्य मे अन्यत्र इस शब्द का प्रयोग ब्राह्मण, उपनिषद् आदि ग्रन्थों मे हुआ है। सप्तलोको की पौराणिक परिकल्पना का आधार भी वैदिक साहित्य ही है। उपनिषदो मे दो लोक माने गए हैं—इहलोक और परलोक। निरुक्त मे तीन लोको का उल्लेख मिलता है—पृथ्वी, अन्तरिक्ष तथा द्युलोक। इनका दूसरा नाम—भू, भुव, स्व है। ये महाव्याहृति कहलाते हैं। इन तीन महाव्याहृतियो की भाति चार और शब्द है—'मह', 'जन', तप', 'सत्यम्'। ये शब्द तीन महाव्याहृतियो के साथ मिलकर सप्त व्याहृति कहलाते हैं। इन सातो महाव्याहृतियो के नाम से पौराणिक काल मे सात लोको की कल्पना हुई—भूर्लोक, भुवर्लोक, आदि। फिर इनके साथ पाताल—जिनके नाम अतल, नितल, वितल, गभस्तिमान, तल, सुतल और पाताल हैं और सब मिलकर चौदह लोक किए गए। पुराणो मे पातालो के नाम मे मतभेद है। पद्म पुराण मे इनके नाम अतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल, महातल, पाताल तथा विष्णु पुराण मे अतल, वितल, नितल, गभस्तिमान्, महातल सुतल और पाताल इनके नाम लिखे गए हैं। इस प्रकार चौदह लोक या भुवन माने गए हैं।[9] भुवनार्थक लोक शब्द पौराणिक काल मे वैदिक साहित्य से प्रेरणा ग्रहण कर चौदह भुवनो के रूप मे परिनिष्ठित हो गया। वैदिक साहित्य के अतिरिक्त लौकिक साहित्य के अन्तर्गत गीता, महाभारत आदि ग्रन्थो मे प्रचुर रूप मे यह शब्द प्रयुक्त हुआ है। अशोक के शिलालेख मे भी इसके प्रयोग से समग्र प्रजा का भाव प्रकट है—

अनुवत्तरासव लोकहिताय गिरिनार करवेयत हि मे सर्वलोकहितम् ।[10]

'लोक' शब्द की अद्यावधि विविध व्याख्याए प्रस्तुत की गयी हैं। 'लोक' शब्द का समानार्थी आग्ल भाषा का शब्द 'फोक' प्रचलित है। फोक शब्द ऐंग्लो सेक्सन शब्द Folc का विकसित रूप है। जर्मन मे यह Volk हो गया है। यूरोपीय विद्वानो मे सर्वप्रथम जान आब्रेन ने सन् 1687 ई० मे सर्वसाधारण जनता के रीति-रिवाज, रहन-सहन, अधविश्वास आदि के अध्ययन का प्रारम्भ किया। डब्ल्यू०जे० थामस ने सन् 1846 ई० मे प्रथम बार 'फोकलोर' शब्द का प्रयोग किया। उन्होने इस शब्द की सार्वजनिक पुरावृत्त (Popularantiquities) के लिए रचना की थी। आगे जाकर यह शब्द प्रयोग और व्यापकता के

कारण जातिबोधक शब्द की तरह चल पड़ा। उनका मत है कि प्राचीन असभ्य और पिछड़ी जातियों के अन्धविश्वास, उनके रीति-रिवाज तथा उनकी प्रथाएं आदि के अव-शिष्ट अंश ही आगे सभ्य कहलाने वाली जातियों में प्राप्त होते हैं।[11]

डॉ० बर्कर ने एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका के फोक डांसिंग निबन्ध में 'फोक' शब्द की व्याख्या करते हुए कहा है कि एक आदिम जाति में वे समस्त जन फोक होते हैं, जिनके द्वारा वह समुदाय निर्मित हुआ है और व्यापक अर्थ में 'फोक' सभ्य राष्ट्र की समग्र जन-संख्या के लिए व्यवहृत हो सकता है। फिर भी पाश्चात्य प्रकार की सभ्यता की दृष्टि में 'फोक' का सामान्यतः प्रयोग (फोकलोर और फोकम्यूजिक आदि समस्त पदों में) संकुचित अर्थ में केवल उन्हीं के लिए आता है जो नागरिक संस्कृति की धाराओं तथा विधिवत् शिक्षा से बाहर हैं, जो निरक्षर हैं अथवा अल्पसाक्षर हैं तथा ग्राम और जनपदों में निवास करते हैं।[12]

हिन्दी में 'फोक' का पर्याय ग्राम, जन और लोक के रूप में प्राप्त है। पं० रामनरेश त्रिपाठी फोक' शब्द के समानार्थी 'ग्राम' शब्द पर ही अधिक आग्रह प्रकट करते हैं, किन्तु उनका यह विचार बहुत वैज्ञानिक स्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि 'ग्राम' शब्द 'लोक' की विशाल भावना को संकुचित रूप में प्रस्तुत करता है।[13] इसके विपरीत 'जन' शब्द में सभी प्राणियों का समावेश किया जा सकता है और इनसे सम्बन्धित जनपद, जनप्रवाह आदि प्रचलित शब्द होने पर भी इसका समावेश 'लोक' शब्द की व्यापकता में हो जाता है। डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी भी इसके व्यापक अर्थ को ग्रहण करने के पक्ष में हैं। जनपद पत्रिका में वे लिखते हैं कि 'लोक' शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम नहीं, बल्कि नगरों और गांवों में फैली हुई समूची जनता है, जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियां नहीं हैं।[14] इस प्रकार डॉ० द्विवेदी 'लोक' शब्द का संकुचित अर्थ ग्रहण न करके इसकी व्यापक व्याख्या ही प्रस्तुत करते हैं।

डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल सम्मेलन पत्रिका के लोक-संस्कृति विशेषांक में 'लोक' शब्द के विषय में अपने विचार प्रकट करते हुए लिखते हैं—लोक हमारे जीवन का समुद्र है, उसमें भूत-भविष्य-वर्तमान सभी कुछ संचित रहता है। वह राष्ट्र का अमर स्वरूप है। कृत्स्न ज्ञान और सम्पूर्ण अध्ययन में सब शास्त्रों का पर्यवसान है। अर्वाचीन में मानव के लिए लोक सर्वोच्च प्रजापति है। लोक और लोक की धात्री सर्वभूतमाता पृथ्वी और लोक का व्यक्त रूप मानव यही हमारे नए जीवन का अध्यात्म शास्त्र है। इसका कल्याण हमारी मुक्ति का द्वार और निर्माण का नवीन रूप है। लोक, पृथ्वी और त्रिलोकी में जीवन का कल्याणात्मक रूप है।[15] डॉ० अग्रवाल जीवन में लोक का अतिशय महत्त्व स्थापित करते हैं। लोक से यहाँ उनका अभिप्राय भूतल तथा भूलोक में निवास करने वाले लोगों से है। लोक-विषयक अपने-अपने मन्तव्यों को अनेक विद्वानों ने प्रसंगानुसार प्रस्तुत किया है, जिनके आधार पर सहज ही यह स्वीकार किया जा सकता है कि आंग्ल भाषा का 'फोक' शब्द 'लोक' का पर्याय होकर भी इस व्यापक अर्थ की व्यंजना नहीं करता, जिस अर्थ में लोक अभिव्यंजित होता है।

'लोक' एव उक्ति' शब्द के विवेचन के अनन्तर विवेच्य विषय लोकोक्ति के स्वरूप प्रतिपादन का कार्य सुगम हो जाता है। शाब्दिक अर्थ की दृष्टि से लोकोक्ति का अभिप्राय है जन सामान्य मे प्रचलित उक्ति[16], किन्तु प्रस्तुत अर्थ मे अतिव्याप्ति दोष स्पष्ट है, क्योकि जन सामान्य की प्रत्येक उक्ति लोकोक्ति की अधिकारिणी नही हो सकती। अतएव लोकोक्ति का तात्पर्य लोक प्रसिद्ध प्रत्येक उक्ति न होकर विशिष्ट उक्ति ही होगा। लोकोक्ति के स्वरूप के स्पष्टीकरण के लिए उसके पर्यायो, परिभाषाओ एव प्रमुख तत्वो आदि पर विचार करना आवश्यक है।

लोकोक्ति के समानार्थक शब्द

'लोकोक्ति' लोक मात्र की सम्पत्ति है। स्वदेशी भाषाओ के अतिरिक्त विश्व की विभिन्न भाषाओ मे इसके पर्याय रूप मे शब्द प्रयुक्त हैं। लोकोक्ति का समानार्थक आग्ल भाषा का शब्द 'Proverb' है। इसका सम्बन्ध फ्रेंच के 'Proverbe' तथा इटली व लैटिन के 'Proverbio' से है। इनके अतिरिक्त लैटिन भाषा मे लोकोक्ति के अर्थ मे प्रयुक्त Proverbium (Pro, verbum, word) शब्द आलकारिक उक्ति का अर्थ देता है। विश्व की विभिन्न भाषाओ मे लोकोक्ति के अर्थ मे प्रचलित शब्दो का सग्रह कर एस० जी० चैम्पियन नामक पाश्चात्य विद्वान् ने उनका शाब्दिक अर्थ भी दिया है। उनकी पुस्तक 'रेसियल प्रावर्ब्स' मे उल्लिखित लोकोक्ति के समानार्थक शब्दो का सक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

1	Arabic—	'Mathal' or 'tamthal'
2	Bularian & Sebro—	'Croatian' as in Russian 'Poslovitsa'
3	Chinese—	'YEN' or 'yen yu' 'Su hua' (common talk) or 'Su yu' (common saying)
4	Czech—	'Prislovi & 'Porekadlo' & 'rikadlo' (a saying)
5	Estonian—	'Vana Sona' (old word)
6	Finnish—	'Sanalasku' (Dropping of a word)
7	Gorgia—	'Andaza' & Igavi (Example, Form)
8	German—	'Sprich Worter' (A Figure of Speech)
9	Greek—	'Paroemian' (by word)
10	Hausa—	'Karim Manga' (by-play with words)
11	Hebro—	'Mashal' (as Arabic, viz—to make like)
12.	Hungarian—	'Koz-Mondas' (common saying)
13	Ice Landic—	'oroskvior'
14	Irish—	'Sean Fhocal' (an old word)

15.	Italian—	'Proverbio' (as in Latin)
16.	Jabo—	'da' 'le' 'kpa' (old matter take)
17.	Japanese—	'Koto-waza' (wordsthal work)
18.	Latin—	'Proverbium' (Figurative Expression)
19	Lattish—	'Sakamvards' (Repeatable or sayable)
20.	Lithuanian—	'Partarle' (to say to utter)
21.	Malay—	'Umpama-an' (Likeness, similarity resemblence)
22.	Maori—	'Whaka tauki' (Similar-simlitude)
23.	Persian—	'Amsal' (to resemble or to reproduce)
24.	Polish—	'Przyslowie' (saying, Expression or a by-word)
25.	Ronga—	'Siga' (current saying)
26	Russian—	Poslovitsa' (Proverbial Expression)
27.	Siam—	'Suphasit' (Skt.—subhasit, Pali—Subhasito—well spoken word)
28	Spanish—	'Proverbio' (an apothegm, a maxim —not a proverb)
29	Spanish—	'Refram' (Referendo)
30.	Swedish—	'Ordspark' (ord-word, sprak-language)
31.	Swahili—	'Methali', 'Methili', 'Mushi' (from the Arabic) (Allegory or similitude)
32.	Turkish—	Atlarsozu(Grand father's saying or Elder's word etc.)
33	Welsh—	'Diharreb' or 'Dihaereb' (A saying, to affirm or assert)
34	Yoruba—	'Owe' (Riddless or play upon words).[17]

उपर्युक्त शब्दो मे लैटिन, इटैलियन तथा स्पैनिश के शब्दो मे समानता है। हिब्रू व अरबी भाषाओ के शब्दों मे भी पर्याप्त साम्य है। स्याम का 'सुफासिट' शब्द सस्कृत के 'सुभाषित' शब्द के सन्निकट है। मलय भाषा का 'उम्पमान' शब्द भी इसी प्रकार सस्कृत के 'उपमा' शब्द के पर्याप्त निकट है। इन विदेशी भाषाओ के शब्दो का प्रयोग कही लोकोक्ति के रूप मे हुआ है, तो कही नीति-कथा, सादृश्य या उपमा आदि के अर्थ मे। इससे यह सिद्ध होता है कि लोकोक्ति के अर्थ मे अथवा उसके निकटवर्ती उपमा आदि अन्य अर्थ के रूप मे प्रयुक्त होकर ये शब्द विभिन्न भाषाओं मे लोकोक्ति के लिए ही ग्रहण किए गए हैं। लोकोक्ति किसी भाषा, देश व काल तक सीमित न होकर 'सार्वकालिक' सार्वदेशिक एव सार्वभाषिक सम्पत्ति है।

भारतीय भाषाओ मे लोकोक्ति के अनेक पर्याय मिलते हैं। संस्कृत मे लोक प्रवाद, लौकिकी गाथा, आभाणक जैसे शब्दो का प्रयोग हुआ है। रामायण में अनेक स्थलो पर ये शब्द प्रयुक्त हुए हैं, यथा अशोक वाटिका मे सीताजी की उक्ति है—

लोक प्रवाद सत्योऽय पण्डितै समुदाहृत ।
अकाले दुर्लभो मृत्यु स्त्रिय वा पुरुषस्य वा ॥[18]

यहा सीताजी ने विद्वज्जन-सम्मत लोकप्रवाद की सत्यता स्वीकार की है कि स्त्री अथवा पुरुष को असमय मृत्यु दुर्लभ होती है।

रामायण मे अन्यत्र 'लौकिक गाथा' शब्द का प्रयोग हुआ है। भरत का हनुमान के प्रति कथन है कि सौ वर्ष के व्यतीत हो जाने पर भी मनुष्य को जीवन का आनन्द प्राप्त होता है, यह लौकिक गाथा कल्याणप्रद है—

कल्याणी वत गाथेय लौकिकी प्रतिभाति मे ।
एति जीवन्त मानन्दो नर वर्ष शतादपि ॥[19]

महाकवि बाण ने कादम्बरी मे 'लोक प्रवाद' शब्द का प्रयोग किया है। लोकप्रवाद है—विपत्ति विपत्ति के पीछे और सम्पत्ति सम्पत्ति के पीछे बधी होती है—सत्योऽय लोक प्रवादो यद् विपद् विपद सपद् सपदमनुबध्नाति।[20]

'आभाणक' शब्द का प्रयोग भी संस्कृत साहित्य मे अनेक स्थलो पर हुआ है। 'मधुर पिण्ड को छोडकर हाथ चाटना' इस लौकिक न्याय को 'आभाणक' शब्द के द्वारा अभिहित किया गया है—

सोऽयमाभाणको लोके पिण्डमुत्सृज्य कर लेढीति ॥[21]

पालि, प्राकृत और अपभ्रश के ग्रथो मे लोकोक्ति के पर्याय के रूप मे प्रवाद या आहाण शब्द स्वीकृत हैं। रत्नशेखर सूरि ने 'सिरवाल कहा' मे अक्खाणय शब्द का प्रयोग कर 'पानी पीकर फिर घर पूछने' वाली लोकोक्ति की सत्यता सिद्ध की है —

अहवा नरवर तुमए एय अक्खाणय कयं सच्चम् ।
पाऊण पाणिय फिर पच्छा पुच्छिज्जए गेहम् ॥[22]

कहने की आवश्यकता नही कि 'आहण' अथवा 'अक्खाण' शब्द संस्कृत के 'आख्यान' शब्द के ही परिवर्तित रूप हैं। 'उपर्युक्त संस्कृत के शब्दो के अतिरिक्त लोकोक्ति के पर्याय के रूप मे कुछ अन्य शब्दो का भी सर मोनियर विलियम्स ने प्रयोग किया है। ये हैं—लोक वाक्य, प्राचीन वाक्य, पुराण वाक्य, लोकप्रचलित वाक्य, वाक्य, वचन, वाक् (च्), सूत्र, प्राचीन सूत्र, पुराणसूत्र, उपमान, उपदेश वाक्य, उपदेश सूत्र, न्याय, न्याय वाक्यम्।[23] उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि देशिक एव वैदेशिक प्राय समस्त भाषाओ मे लोकोक्ति के समानार्थक शब्द उपलब्ध होते हैं। यद्यपि किसी भी शब्द का सटीक एव यथार्थ समानार्थक शब्द सिद्ध करना सुगम नही है, तथापि अर्थ-साम्य की दृष्टि से विदेशी एव स्वदेशी भाषाओ मे अनेक ऐसे शब्द हैं, जो लोकोक्ति रूपी धुरी के इतस्तत चक्कर काटकर लोकोक्ति के अर्थ का ही द्योतन करते हैं। यद्यपि 'उपदेश

सूत्र' तथा 'न्याय वाक्य' आदि शब्दो का लोकोक्ति के साथ सीधा सम्बन्ध नही है, तो भी प्रसग के अनुरूप ये शब्द जिस तथ्य की ओर सकेत करते हैं, वह लोकोक्ति से भिन्न नही है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि पूर्व विवेचित पर्यायवाची शब्द लोकोक्ति के लिए ही प्रयुक्त हुए हैं। इनमे कुछ शब्द लोकोक्ति से भिन्न प्रतीत होने पर भी अर्थ-नैकट्य के आधार पर लोकोक्ति के ही वाचक माने गए हैं।

लोकोक्ति की परिभाषा एव रूप-सरचना

यद्यपि किसी भी साहित्यिक विधा को सुनिश्चित शब्दो मे परिभाषाबद्ध नही किया जा सकता और न उसकी वैज्ञानिकता एव सत्यता को अन्तिम रूप प्रदान करने की घोषणा ही की जा सकती है, तथापि इसका इतना लाभ अवश्य है कि इससे परिभाषित वस्तु के स्वरूप का स्पष्टीकरण अवश्य हो जाता है।

लोकोक्ति लोक की सम्पत्ति होने के कारण विश्व की विभिन्न भाषाओ मे एतद्-विषयक विचार प्रकट किए गए हैं। योरोपीय भाषाओ को ही लीजिए, इनमे लोकोक्ति के बारे मे अपनी-अपनी दृष्टि से विचार किया गया है—

—प्राचीन उक्तिया असत्य नही होती।

—लोकोक्तिया वार्तालाप मे अन्धकार मे प्रकाशपुज (टार्च) के समान हैं।

—ससार की समस्त सद्भावनाए लोकोक्तियो मे निहित होती हैं।

—लोकोक्तिया अनुभवो की सन्तति हैं।

—लोकोक्तिया ज्ञान का पथ हैं।

—लोकोक्तियो का सृजन अनुभव से होता है।

—लोकोक्तिया समाज का सारतत्व हैं।

—कुछ व्यक्तियो का कथन सत्य हो सकता है, किन्तु सभी व्यक्तियो का कथन सत्य ही होता है।

—लोकोक्तिया विचारो तक पहुचने का सोपान है।

—हमारा जीवन दोष ग्रस्त हो सकता है, परन्तु लोकोक्तियो मे समाविष्ट भाव को व्यवहार मे क्रियान्वित करने से जीवन दोषमुक्त हो सकता है।

—उत्तम कथन ही सर्वश्रेष्ठ वस्तु है और लोकोक्तिया कभी-कभी कल्पना मे पाव के जूते के सही माप से भी अधिक उचित प्रतीत होती हैं।

—वेल्श की एक उक्ति के अनुसार प्रत्येक लोकोक्ति सत्य होती है।

—डच की एक लोकोक्ति के अनुसार—ये दैनिक अनुभव की दुहिताए हैं।

—एस्टोनियन भाषा मे लोकोक्ति को विचारो की कुजिका माना गया है।

—स्पेनिश भाषा मे कहा गया है कि वह लोकोक्ति लोकोक्ति कहलाने की अधिकारिणी नही, जो सत्य न हो, लोकोक्ति तो समस्त ज्ञान की माता है।

—एक जापानी लोकोक्ति के अनुसार—लोक-वाणी ईश्वरीय वाणी होती है।

—यिद्दिश मे एक लोकोक्ति है कि इसके द्वारा सत्य उद्घाटित होता है।[24]

यहा लोकोक्ति के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए कही कही आलकारिक शैली का आश्रय ग्रहण किया गया है। कही अतिशयोक्ति के आधार पर उनकी प्रशसा की गई है, तो कही उनम निहित विचार, अनुभव, सत्य एव ज्ञान के सारतत्त्व की चर्चा की गई है। कही इन्हे विचारो की सवाहिका बताया गया है, तो कही इन्हे विचारो की कुजी बताते हुए इन्हे विचारप्रधान सिद्ध किया गया है। इगलिश एव डच भाषा की उक्ति म जहा इन्हे अनुभव-प्रसूता बताया गया है, वहा इसके विपरीत स्पैनिश भाषा मे इन्हें समस्त ज्ञान की जन्मदात्री सिद्ध किया गया है।

लोकोक्ति के विषय मे अनेक विद्वानो ने अपने-अपने विचार प्रकट किए हैं। अरस्तू के शब्दो मे—सक्षिप्त और प्रयोग के लिए उपयुक्त होने के कारण तत्त्वज्ञान के खण्डहरो मे से चुनकर निकाले हुए टुकडे—बचा लिए गए अश को लोकोक्ति की सज्ञा से अभिहित किया जा सकता है। टेनीसन के अनुसार लोकोक्तिया वे रत्न हैं जो लघु आकार के होने पर भी अनन्त काल की अगुली मे सदा जगमगाते रहते हैं। जुबर्ट ने इन्हे 'ज्ञान' के सक्षेपीकरण के नाम से अभिहित किया है। सर्वेण्टीज का मत है कि लोकोक्तिया वे छोटे छोटे वाक्य हैं जो जीवन के दीर्घकालीन अनुभवो को अन्तर्निहित किए हुए हैं। एग्रीकोला की दृष्टि मे ये सक्षिप्त वाक्य हैं जिनमे सूत्रो की तरह आदिम पुरुषो ने अपनी अनुभूतियो को भर दिया है। इरेस्मस का मत है कि वे प्रसिद्ध और सुप्रयुक्त उक्तिया लोकोक्ति कहलाती हैं, जिनकी एक विलक्षण ढग से रचना हुई हो। बाइबिल मे कहा गया है कि कहावती ज्ञानज्ञानी जनो की उक्तियो का निरूपण है। डिजरेली के अनुसार लोकोक्तिया पाण्डित्य की अश हैं जो मानव सृष्टि के आदिम काल मे अलिखित नैतिक कानून का काम देती थी।[25] इस विषय मे कुछ अन्य विचारको का मन्तव्य भी देखा जा सकता है—

(क) जीवन मे व्यवहृत होने वाले छोटे छोटे कथन—एग्रीकोला
(ख) जनता मे निरन्तर व्यवहृत होने वाले लघु कथन—जानसन
(ग) व्यावहारिक जीवन मे मार्ग दर्शक वचन—फीस्ते
(घ) वे कथन जो अनाम हैं, जिनके निर्माता का पता नही—ट्रेंच
(ङ) दीर्घ कालीन चतुराई (मानव अनुभव) से चुने हुए छोटे छोटे वचन —सर्वेण्टीज
(च) सर्वथा जनता की अपनी भाषा मे किसी सवमान्य सत्य को थोडे से शब्दो म प्रकट करने वाला लोकप्रचलित कथन—वोरकोर्ट
(छ) अनेको का चातुर्य और एक की बुद्धि का चमत्कार—एक की सूझ जिसम अनेको का चातुर्य सन्निहित है—रसेल।[26]

उपर्युक्त परिभाषाओ मे लोकोक्ति के तात्विक स्वरूप का प्रतिपादन न होकर उसकी भिन्न भिन्न विशेषताओ का ही निर्देश किया गया है। प्रथम परिभाषा मे इसकी उपयोगिता सिद्ध की गई है, तो दूसरी म लोकप्रियता। तृतीय परिभाषा म इसके प्रयोजन पर प्रकाश डाला गया है। ट्रेंच ने एक नवीन तथ्य प्रकट किया है कि लोकोक्तिया अज्ञात-

नामा होती हैं। उनका यह मत सर्वथा स्वीकार्य नही है, क्योंकि इस दृष्टि से इनके दो विभाग किए जा सकते हैं—ज्ञातनामा तथा अज्ञातनामा। ज्ञातनामा लोकोक्तियो के रचयिता का नाम प्रयोक्ता को पता होता है। अनेक साहित्यकारो द्वारा प्रयुक्त लोकोक्तियां उन्ही के नाम से जानी जाती हैं। लार्ड रसल ने इसकी अर्थ मे लोकोक्ति को एक व्यक्ति की विदग्धता तथा अनेक का ज्ञान कहा है। इन परिभाषाओ मे कहीं लोकोक्ति के सक्षिप्त रूप की चर्चा है, तो कही उनमे निहित मानव अनुभव, बुद्धिगत चमत्कार अथवा सर्वमान्य सत्य का प्रतिपादन किया गया है, किन्तु कोई भी परिभाषा ऐसी नही है, जिसमे लोकोक्ति को पूर्णरूपेण परिभाषित किया गया हो, अतएव इनमे अव्याप्ति दोष आ जाता है।

विभिन्न शब्दकोशो मे लोकोक्ति का सारगर्भित विवेचन प्राप्त होता है। शिप्ले अपने साहित्यिक पारिभाषिक कोश मे लिखते है कि लोकोक्ति लोक-साहित्य का सक्षिप्त किन्तु अर्थपूर्ण एक सूत्रमय प्रकार है, जिसमे सामान्य अनुभव पर आधारित सक्षेपतः जीवन की एक विचारपूर्ण आलोचना होती है। सामान्यत जनप्रिय मस्तिष्क से उद्भूत इस लोकोक्ति मे लोक-प्रचलित मनोवृत्ति का महत्त्वपूर्ण प्रतिबिम्ब होता है। रोम व जर्मन की नाटकीय व साहित्यिक आलोचना मे इसका बहुधा प्रयोग हुआ है। अपनी विशेषताओ के कारण ही यह लोक के द्वारा ग्राह्य होती है।[27]

एक विश्वकोश के अनुसार लोकोक्ति किसी सत्य अथवा किसी उपयोगी विचार को एक सक्षिप्त वाक्य में कहती है। इसके प्रयोग से भाषा मे सरसता एव चित्रात्मकता आ जाती है। इनका प्रयोग चिरकाल से अनेक व्यक्तियो द्वारा होता रहा है और आज भी प्रसग के उपस्थित होने पर इनका प्रयोग होता है। जन-सामान्य द्वारा ग्रहण किए जाने पर ही कोई उक्ति लोकोक्ति का रूप धारण करती है।[28]

विभिन्न कोशो मे लोकोक्ति की अद्यावधि अनेक परिभाषाए उपलब्ध हैं। एक विश्वकोश मे विवेचित तत्त्वो के आधार पर लोकोक्ति मे चार गुण स्वीकार किए गए हैं। ये हैं—सक्षिप्तता, सारगर्भितता, सप्राणता अथवा चटपटापन एव लोकप्रियता। मूल रूप मे इनमे ट्रेंच तथा हैवेल ने प्रथम तीन गुणो को और बाद मे हेस्टिग्स ने एक अन्य तत्त्व 'लोकप्रियता' को इसके अनिवार्य तत्त्व के रूप मे अगीकृत किया है।[29] डॉ० कन्हैयालाल 'सहल' ने सक्षिप्तता, सारगर्भितता और सप्राणता किसी उत्कृष्ट लोकोक्ति के तो अपरिहार्य गुण स्वीकार किये हैं किन्तु लोकोक्ति मात्र के अनिवार्य गुण नही माने हैं।[30] यहा विचारणीय है कि प्रत्यक्षत डॉ० सहल ने इन गुणो को लोकोक्ति का अपरिहार्य तत्त्व न मानकर भी परोक्षत इनके महत्त्व को स्वीकार किया है।

सक्षिप्तता—सक्षिप्तता लोकोक्ति की अन्यतम विशेषता है। विस्तृत भाव को भी लोकोक्ति सक्षिप्त शब्दो द्वारा अभिव्यक्त कर देती है। गागर मे सागर भर देने का गुण लोकोक्तियो मे विद्यमान है। व्यापक समस्याए, अनुभव गाम्भीर्य और जटिल प्रश्न छोटे से नुकीले और चटपटे वाक्यों में सिमट कर सदा से प्रचलित होते रहे हैं। लोकोक्ति अपने लाघव के कारण सबके मुंह पर रहती है। बडे वाक्यो को स्मरण करना

कठिन होता है। अनुभवों का विस्तार लाघव गुण के कारण हृदय पर एकदम असर करता है। सम्पूर्ण प्रभाव एकमुख होकर छोटे से वाक्य अथवा वाक्यांश में इस तरह व्यक्त होता है कि लम्बे-चौड़े तर्क और विस्तृत वर्णन वहां बेकार हो जाते हैं। लोकोक्ति का लाघव ही उसे सूत्र रूप प्रदान करता है।[31] लोकोक्ति में कम से कम शब्दों का प्रयोग करके अधिक से अधिक प्रभावोत्पादन की क्षमता विद्यमान होती है। यही कारण कि शेक्सपीयर ने संक्षिप्तता को वाग्वैदग्ध्य का प्राण माना है।[32] जॉनबर्ट के अनुसार ज्ञान के संक्षेपीकरण को लोकोक्ति कहा जा सकता है।[33] आर्च बिशप ट्रेंच लिखते हैं कि लोकोक्ति संक्षिप्त, अर्थपूर्ण और रोचक होती है। यह थोड़े से शब्दों से सजा हुआ बृहद् ज्ञान है। डॉ० ओम्प्रकाश गुप्त की दृष्टि से लोकोक्तियां वे संक्षिप्त वाक्य हैं, जिनमें सूत्रों की तरह आदिम पुरुषों ने अपनी अनुभूतियों को भर दिया है।[34] डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय ने इसका प्रधान उद्देश्य समास रूपों में संचित अनुभूत ज्ञान-राशि का प्रकाशन माना है। उन्होंने इसकी दो विशेषताएं मानी हैं—समास शैली और अनुभव निरीक्षण—लोकोक्तियों में सबसे पहली विशेषता है इसकी समास शैली। इनमें इनके रचयिताओं ने गागर में सागर भरने का प्रयास किया है। इनकी दूसरी विशेषता है अनुभूति और निरीक्षण।[35] संक्षिप्तता लोकोक्ति की एक ऐसी विशेषता है जो इसे अन्य विधाओं से भिन्न करती है। 'लोकगीतों', 'पवारों' और 'लोककथाओं' में विस्तार की भावना रहती है, जबकि कहावतें और पहेलियां गागर में सागर भरने का प्रयास करती हुई सूत्र शैली का प्रयोग करती हैं। इसी शैली के कारण इन्हें घनीभूत रस की संज्ञा दी जाती है।[36] डॉ० सहल लोकोक्ति की संक्षिप्तता के अभिप्राय को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि लोकोक्ति की संक्षिप्तता से यही अर्थ लिया जाना चाहिए कि उसमें न्यूनतम शब्दों का प्रयोग हो, अनावश्यक एक भी शब्द उसमें न आने पाये। उदाहरणार्थ अरबी की एक कहावत प्रस्तुत है—"शतुरमुर्ग से किसी ने कहा—ले चल। उसने उत्तर दिया—मैं पक्षी हूं, भार वहन नहीं कर सकता। तब किसी ने कहा—उड़ चल। तुरन्त ही शतुरमुर्ग कह उठा—मैं उड़ नहीं सकता क्योंकि मैं ऊंट हूं।" यह कहावत ऐसी है जिसे और संक्षिप्त नहीं किया जा सकता किन्तु है लोकोक्ति ही, चाहे कितनी लम्बी क्यों न हो।[37] इसी प्रकार की एक अन्य लोकोक्ति भी प्रस्तुत की जा सकती है—"चमगादड़ पहले पक्षियों के पास गया और कहा—मैं पक्षी हूं, मेरे पंख हैं। फिर वह पशुओं के झुण्ड में गया और कहा—मैं पशु हूं। उन्होंने पूछा—कैसे? तुरन्त ही दांत दिखाते हुए चमगादड़ ने कहा—क्योंकि पशुओं की ही तरह मेरे भी दांत हैं।" वैसे इस प्रकार की लोकोक्तियां बहुत कम हैं, इन्हें अपवाद स्वरूप ही स्वीकार किया जाएगा। लोकोक्तियां प्राय. संक्षिप्त ही होती हैं। विषय के स्पष्टीकरण के लिए अष्टछाप-काव्य की कुछ लोकोक्तियां प्रस्तुत हैं—

(क) अनलहि औषधि अनल है।

(ख) अपनो बोयो आप लुनो।

(ग) आपु काज मह काज।

(घ) आसुर ध्यान प्रतष्छ प्रमाने।
(ङ) इह जोवन धन दिवस चारि को।
(च) एक पंथ द्वै काज।
(छ) एक म्यान दो खांडे।
(ज) कहा करौ जो नाकहि आई।
(झ) गोरस बेचत आपु बिकानी।
(ञ) ससि न गह्यौ परतु चौन पं।[38]

उपर्युक्त लोकोक्तियो के आधार पर यह तथ्य प्रकट है कि इनमे कोई भी शब्द व्यर्थ नही जोडा गया है। हा, इतना अवश्य है कि साहित्य में लोकोक्ति के प्रयोग करने पर प्रयोक्ता को छन्द-रचना आदि की दृष्टि से इन्हें कुछ परिवर्तन के साथ अवश्य प्रस्तुत करना पडता है। इसके लिए अष्टछापेतर साहित्य मे प्रयुक्त कतिपय लोकोक्तियो को लिया जा सकता है। एक लोकोक्ति है—'किसी के लिए कुआं खोदना'। इस लोकोक्ति का प्रयोग किसी को हानि पहुचाने की चेष्टा करने के अर्थ मे होता है। तुलसी ने इसका प्रयोग कुछ भाषिक परिवर्तन के साथ इस प्रकार किया है—

'जोइ जोइ कूप खनैगो पर कहं सो सठ फिरि तेहि कूप परैं।'[39]

हिन्दी की एक लोकोक्ति है—'खोदा पहाड निकली चुहिया'। बहुत करने पर थोडा लाभ होना इसका अभिप्राय है। गिरधर कविराय ने इसका प्रयोग कुछ परिवर्तन के साथ किया—

छोटा जिय हत्या बडी, अल्प लाभ बहु खेद।
सो न पडैं प्रवृत्ति मे जिन जान्यो यह भेद।
जिन जान्यो यह भेद नही वह छानत भूसा।
खोदे महा पहाड़ मिले एक लघु सा मूसा॥[40]

अभिप्राय यह है कि लोकोक्तिकार इसका साहित्य मे प्रयोग करते हुए भाषा-छन्द तुक लय आदि की सुविधानुसार इसमे यत्किंचित् परिवर्तन कर देता है, किन्तु फिर भी प्रकृत्या लोकोक्ति सामासिक शैली से युक्त होने के कारण प्राय संक्षिप्त ही होती है।

सारगर्भितता लोकोक्ति का दूसरा प्रमुख तत्त्व सारगर्भितता है। सारगर्भित होकर लोकोक्ति प्रभावोत्पादक होती है। लोकोक्ति की मुख्य विशेषता के रूप मे सारगर्भिता को ग्रहण किया गया है। इसके अभाव मे कोई भी उक्ति वाग्जालमात्र ही रह जाती है और वह लोकोक्ति का स्थान प्राप्त नही कर सकती। इसके विपरीत कही-कही वडे वडे वाक्य भी सारगर्भित और लोकसम्मत होने के कारण लोकोक्तियो के रूप मे प्रयोग होने लगते हैं। कही-कही लयात्मक, भावात्मक और अनुभवपूर्ण उक्ति ही दोहा, चौपाई आदि छन्दो के रूप मे बदलती हुई लोकोक्तिवत् प्रयोग मे आती रहती है, यथा —"जिन खोजा तिन पाइया गहरे पानी पैठ'।[41] लोकोक्तियो के अनुशीलन करने पर बलपूर्वक कहा जा सकता है कि इनमें हास्य, व्यग्य, ललकार, चेतावनी—सभी के द्वारा तात्त्विक बातो की शिक्षा दी जाती है। किसी भी कहावत को देखा जाए, उसमे सारगर्भितता अवश्य विद्-

मान होगी। साधारण से साधारण उक्ति मे भी सारपूर्णता को देखा जा सकता है।[42] डॉ० कन्हैयालाल सहल ने अधिकांश लोकोक्तियो मे सारगर्भितता को स्वीकार किया है, तथापि इसकी अनिवार्यता स्वीकार नही की है—कहावतें एक समान सारगर्भित होती हैं, ऐसा नही कहा जा सकता।'कपडा फाट गरीबी आई। जूतो टूटो चाल गमाई।''अर्थात् कपडे फट गए और गरीबी आ गई। ज्यो ही जूते टूटे चाल का मजा जाता रहा। कहने का तात्पर्य यह है कि फटे वस्त्र और टूटे जूते गरीबी के द्योतक होते हैं। सारगर्भितता की दृष्टि से इस कहावत का कोई विशेष महत्त्व नही जान पडता किन्तु यह अवश्य स्वीकार करना होगा कि अधिकाश कहावतें सारगर्भित होती हैं।[43] अन्य कुछ विद्वानो ने डॉ० सहल के इस मन्तव्य के प्रति अपना विरोध प्रकट कर सारगर्भितता को अपरिहार्य गुण स्वीकार किया है। डॉ० सहल के मत का खण्डन करते हुए डॉ० मदनलाल शर्मा लिखते हैं—इस लोकोक्ति मे 'गरीबी' जैसी दीन दशा का बडा ही मार्मिक चित्रण किया है। कितने ही गरीब लोग उस प्रकार की 'दीन हीन दशा मे फिरते है, जिनके न सिर पर टोपी है न गात में लगोटी और न पैरो मे जूते। ऐसी दशा को देखकर कठोर हृदय भी पिघल जाते हैं, फिर इस कथन मे निस्सारता कैसे आ गई। सुदामा की दशा भी तो यही थी— 'धोती फटी सी लटी दुपटी अरु पाय उपानह की नही सामा''। इस दशा को देख कर श्रीनाथ श्रीकृष्ण भी गद्गद हो गए, फिर इसी के समान भावपूर्ण चित्रात्मक कथन सारगर्भितता से वचित रह जाए, उपयुक्त नही लगता। इसी प्रकार डॉ० सहल की दृष्टि मे जो लोकोक्तिया सारगर्भित नही हैं, वे या तो लोकोक्तिया ही न होगी, और यदि विद्वानो द्वारा उन्हे लोकोक्ति की कोटि मे रखा गया है तो वे सारगर्भित अवश्य हैं, क्योकि कोई भी सारगर्भितता से रहित कथन लोक द्वारा नही अपनाया जा सकता। देखिए— गुण के गाहक सहस नर बिन गुन लहै न कोय' (गिरधर की कुडली) और सारगर्भितता गुण ही है। फिर जिस उक्ति को सहस्रो व्यक्ति अपनाकर व्यवहार मे लाते हैं और जिस पर लोक द्वारा प्रामाणिकता की मुहर लगा दी हो, वह उक्ति कभी भी गुण अथवा साररहित नही हो सकती।[44] डॉ० शर्मा के इस मन्तव्य को उद्धृत करने के बाद लोकोक्ति मे निहित सारगर्भितता के प्रति कोई सन्देह नही रह जाता।

सप्राणता—सप्राणता का अर्थ है सजीवता। डॉ० सहल ने इसे चटपटापन का पर्याय स्वीकार किया है। इससे लोकोक्ति की महत्ता बढ जाती है। भगिमापूर्ण होने के कारण लोकोक्ति वैचित्र्य की सृष्टि करती है। मुक्तक शैली मे रचित लोकोक्तिया मर्मस्पर्शी एव विदग्धतायुक्त होकर श्रोता के हृदय मे जहा अपनी अमिट छाप अकित करती है वहा वक्ता भी लोकोक्ति की इस विशेषता से परिचित होता है। नायक और नायिका मे कोई किसी से कम नही है। इस बात को कहने के लिए सूर सामान्य ढग को न अपना कर अनूठे ढग से ही कहते हैं— यह द्वादस वह ऊ दस द्वै को।'[45] सप्राणता वस्तुत लोकोक्ति की जीवन्तता है। अपनी अपूर्व विशेषताओ के कारण लोकोक्ति लोकप्रिय होकर कालजयी बन जाती है। डॉ०लक्ष्मीनारायण शर्मा ने सजीवता को लोकोक्ति मे आवश्यक मानते हुए इसे सारगर्भितता के अन्तर्गत माना है। उनके अनुसार किसी भी वस्तु की

सजीवता उसका सार ही है।[46] उनका यह दृष्टिकोण एकांगी दृष्टि का परिचायक है, क्योंकि लोकोक्ति में ज्ञान के सार तत्त्व को विशिष्ट भगिमापूर्ण ढग के साथ प्रस्तुत किया जाता है। इसके अभाव मे सारगर्भित होकर भी उक्ति सूक्ति मात्र रह जाती है। विच्छित्ति लोकोक्ति को अमरता प्रदान करती है।

डॉ० सहल सप्राणता को लोकोक्ति का महत्त्वपूर्ण तत्त्व मानते हुए भी इसकी अपरिहार्यता मानने के पक्ष मे नही हैं। वे लिखते हैं—सप्राणता (चटपटी) होने से कहावत का महत्त्व बढ जाता है, किन्तु ऐसी भी अनेक कहावतें हैं जिनमे अभिव्यक्ति का वैचित्र्य नही मिलता। 'धन खेती, धिक चाकरी', 'बडो की बडी ई बात', 'बाटकर खाना और सुरग मे जाणा', जैसी कहावतो मे कोई चटपटापन नही है।[47] इनके प्रतिपक्ष मे सप्राणता को साग्रह स्वीकार करते हुए अन्य विचारक लिखते हैं कि इन उदाहरणो मे सप्राणता का निषेध करना उपयुक्त नही जचता। प्रथम लोकोक्ति को ही लीजिए। खेती करने म 'स्वतन्त्रता' की और नौकरी करने मे 'परतन्त्रता की ध्वनि व्यजित होने स खेती करना प्रशसनीय है और नौकरी करना निंदनीय। स्वतन्त्र व्यक्ति का आत्मसम्मान सुरक्षित रहता है और परतन्त्र व्यक्ति को 'रोजी' के लिए आत्मसम्मान को बेचना पडता है। खेती और नौकरी मे एक अन्तर यह भी है कि किसान सर्वाधिक परिश्रमी-ईमानदार होता है जबकि नौकरी करने वाले व्यक्ति मे इनका अभाव भी हो सकता है। जो लोकोक्ति अपने गर्भ मे स्वतन्त्रता परतन्त्रता की इतनी बलवती भावना को सजोए हो तथा जहा स्पष्ट शब्दो मे 'खेती' और 'नौकरी' के गुण दोषों पर इतना तीक्ष्ण व्यग्य हो वहा यह कैसे कहा जा सकता है कि इस लोकोक्ति मे सप्राणता या चटपटापन नही है।[48] इसी प्रकार दूसरी लोकोक्ति मे एक साधन विहीन निर्धन व्यक्ति की असमर्थता एव साधन सम्पन्न व्यक्ति की सम्पन्नता अभिव्यजित है। दोनो की तुलना मे जहा एक स्वय को अशक्त एव असमर्थ अनुभव करता है, वहा धनिक व्यक्ति के कार्यों से उसे ईर्ष्या भी होती है। तृतीय लोकोक्ति मे व्यक्ति को स्वार्थ के परित्याग की शिक्षा दी गई है। वैदिक साहित्य मे भी कहा है—जो व्यक्ति अकेला खाता है, वह पाप खाता है— केवलाघो भवति केवलादी।' इस उक्ति मे जहा व्यक्ति मे लोभ के त्याग के लिए भय दिखाया गया है, वहा 'बाटकर खाणा अर सुरग मे जाणा' इस लोकोक्ति मे लोभ-नीति के द्वारा ही लोभ-त्याग का उपदेश दिया गया है। उदारता-दया-दान आदि की शिक्षा देने के कारण इसका महत्त्व प्राचीन काल से ही रहा है। हा, इतना अवश्य है कि उपदेशपरक अथवा शिक्षाप्रद लोकोक्तियो मे सप्राणता न्यूनाधिक हो सकती है, किन्तु इसके अस्तित्व को अस्वीकार नही किया जा सकता। विषय के स्पष्टीकरण के लिए कुछ उदाहरण लिए जा सकते हैं—एक प्रचलित उक्ति है कि अज्ञानी व्यक्ति का चित्र अनियत्रित रहता है। ज्ञान के अभाव मे वह अपनी चित्तवृत्तियो का निरोध नही कर सकता। नन्ददास ने इस उक्ति को चमत्कारपूर्ण बनाने के लिए पूरे प्रकरण को ही वैचित्र्ययुक्त कर दिया है। बानगी देखिए—

महानक्र-मुख जो मन। होई ताहि कर करि काढ़ं कोई।
कुपित भुजगम सिर पर धरै। हाथनि पार-रासि पुनि तरै॥

तेल लहै करि धुरि को धानी । मृगतृष्णा तें पीवै पानी ।।
खोजि ससा के शृंगनि पावै । पै मूरख मन हाथ न आवै ।।[49]

यहा कवि ने वैचित्र्य व्यापार की सृष्टि करते हुए इस बात पर बल दिया है कि प्रकृति की व्यवस्था विपरीत हो सकती है, हर असम्भव कार्य सम्भव हो सकता है, किन्तु अज्ञानी व्यक्ति कभी भी यम नियम आदि का पालन न कर सकने के कारण ज्ञान के अभाव मे मन पर सयम नही रख सकता। वस्तुत यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि अनुभूति की तीव्रता को प्रकट करने के लिए कवि सामान्य भाषा के स्थान पर भगिमापूर्ण अभिव्यक्ति के द्वारा ही अपने भावो को मूर्त रूप देता है। लोकोक्ति की सरचना भगिमापूर्ण होने के कारण इस दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी है। लोकमान्य सिद्धान्तो के आधार पर कवि लोकोक्ति के प्रयोग के द्वारा अपनी सवेदना को सार्थकता प्रदान करता है। नन्ददास की एक लोकोक्ति है—दरबी ज्यो व्यजन मे स्वाद न जाने मद।[50] यहा कवि का अभीष्ट है—मन्दमति व्यक्ति की अयोग्यता पर व्यग्य करना। अवसर प्राप्त होने पर भी अज्ञानी व्यक्ति उसका लाभ प्राप्त नही कर सकता। इस आशय को प्रकट करने के लिए कवि एक लोकसिद्धान्त को आधार बनाता है। अर्थात् जिस प्रकार कडछी मधुर व्यजनो मे निमज्जित होने पर भी उसके स्वाद से अपरिचित होती है इसी प्रकार अज्ञानी व्यक्ति अनभिज्ञता के कारण उद्दिष्ट वस्तु के महत्त्व को न जानकर उसके लाभ से वचित रह जाता है। अन्य लोकोक्तिया देखिए—

—काग हस की सगति लहसुन सग कपूर।
—किहिं कागद की तरनी कीन्हीं, कौन तर्यौ सर जाई।
—डरपत फिरै मृगी तैं सिंघ क्यो ?
—खाए आये बेर के हो सो वन मे होत कुमार।[51]

यहा क्रमश वैषम्य, असम्भाव्य, वैचित्र्य तथा मिथ्या प्रदर्शन सम्बन्धी विषयो की चर्चा की गई है। अपनी बात को प्रभावशाली बनाने के लिए लोकोक्तिकार ने सामान्य कथन के रूप मे न कहकर अनूठे ढग से अपनी बात कही है। प्रथम उक्ति मे विषमता प्रतिपादित की गई है। इस वैषम्य के प्रतिपादन के लिए लोकोक्तिकार अपनी कल्पनाशक्ति के द्वारा प्राणिजगत् के काग' एव 'हस' के गुणगत-वर्णगत आदि वैषम्य से परिचित होकर लोकोक्ति मे इसका प्रयोग करता है। इसी प्रकार परस्पर विरोधी स्वभाव वाली वस्तुओ लहसुन तथा कपूर को एक स्थान पर एकत्रित कर विषम वस्तुओ की सगति के आधार पर लोकोक्ति को सम्यक्रीत्या प्रभावशाली बनाकर अभिव्यक्ति को शक्ति प्रदान की जाती है। प्रयोग की दृष्टि से प्रसगानुसार प्रयुक्त होकर भगिमापूर्ण होने के कारण लोकोक्ति पूरे प्रकरण मे चमत्कार उत्पन्न कर देती है। द्वितीय लोकोक्ति म अनुपयुक्त साधन से साध्य की प्राप्ति को असम्भव बताया गया है। इसके लिए कवि ने लोक-प्रचलित सिद्धान्त को आधार बनाया है कि कागज की नाव से जल यात्रा को पूर्ण करने का दुःस्वप्न हास्यास्पद ही कहा जा सकता है। किसी व्यक्ति की अनुपयुक्त चेष्टाओं के द्वारा लक्ष्यप्राप्ति की आशा करना मृगमरीचिका की भांति है। व्यक्ति के इस कार्य व्यापार पर कवि ने लोक-न्याय को आधार बनाकर जो उपहास किया है, उससे समस्तप्रसग

प्राणवन्त बन जाता है। तृतीय लोकोक्ति में निबल व्यक्ति द्वारा शक्तिशाली व्यक्ति को भयभीत करने की कल्पना पर व्यंग्य किया गया है। शक्तिहीन व्यक्ति की दुराशा को प्रकट करने के लिए वन्य पशुओं—मृग सिंह को आधार बनाकर अपनी अभिव्यक्ति को सप्राण बनाया गया है। अन्तिम उक्ति में अनधिकारी व्यक्ति के मिथ्या प्रदर्शन पर सीधा व्यंग्य है। 'खाए आधे बेर' कहकर उसकी अल्पावस्था तथा 'होत कुमार' के द्वारा मिथ्याभिमान को अनुचित बताया गया है। यह उक्ति 'छोटे मुह बड़ी बात' वाली लोकोक्ति के भाव को किंचित् परिवर्तन के साथ प्रस्तुत करती है। विशिष्ट भंगिमा से युक्त होकर लोकोक्ति जहा स्वयं सप्राण होती है, वहा प्रकरण में भी चमत्कार उत्पन्न करके उसे प्राणवन्त बना देती है—गो० तुलसीदास की एक व्यंग्यात्मक लोकोक्ति देखिए—

करम उपासन ज्ञान वेदमत, सो सब भांति खरो।
मोहिं तो सावन के अंधहिं ज्यों, सूझत रंग हरो॥[52]

लोकोक्ति है— सावन के अंधे को हरा ही हरा दिखाई देता है।' तुलसी ने वैदिक धर्म की श्रेष्ठता प्रतिपादित करते हुए अवैदिक मान्यताओं के प्रति विरोध प्रकट करने के लिए इसका आश्रय ग्रहण किया है। लोकोक्ति का भावार्थ करते हुए कोशकार ने लिखा है कि जो अनुचित उपाय से अथवा अकस्मात कुछ प्राप्त कर लेते हैं और समझते हैं कि ऐसा ही सब करते हैं।[53] इसी से मिलती जुलती एक और लोकोक्ति है—'पीलिया के रोगी को पीला ही पीला दीखता है।' कहने का अभिप्राय यही है कि सप्राणता से युक्त लोकोक्ति युग युगांतर तक लोक जिह्वा पर नर्तन करती रहती है। सजीवता लोकोक्ति की अपरिहार्य विशेषता है। इसके अभाव में लोकोक्ति प्रचलन रहित होकर अपने स्वरूप को खो देती है। वस्तुत लोकोक्ति मनुष्य के परम्परित ज्ञान की परिपुष्ट, लोकसिद्ध, प्रभावोत्पादक, कलात्मक और पृष्ठभूमि के वैचित्र्य का सजीव सूत्र है।[54]

लोकप्रियता—लोकप्रियता लोकोक्ति का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण निकष है। संक्षिप्तता, सारगर्भितता एवं सप्राणता—इन तीनों गुणों के होते हुए भी कोई उक्ति लोकोक्ति के रूप में अभिहित की जा सके, यह आवश्यक नहीं है, क्योंकि मात्र इन तीनों तत्त्वों के आधार पर लोकोक्ति के स्वरूप का निर्धारण असम्भव है। इनके आधार पर कोई उक्ति सूक्ति अथवा प्राज्ञोक्ति का रूप धारण करती है, किन्तु लोकोक्ति रूप तभी प्राप्त होता है जब उसे लोक-मानस ग्रहण कर ले। जेम्स हेस्टिंग्स लिखते हैं कि संक्षिप्तता, सारगर्भिता और सप्राणता—इन तीन गुणों के होते हुए भी कोई उक्ति लोकोक्ति कही जा सके, यह अनिवार्य नहीं है क्योंकि उस उक्ति को लोकोक्ति नाम लोक-स्वीकृति की प्राप्ति के अनन्तर ही प्राप्त होगा।[55] लोकोक्ति लोक की ही उक्ति है। हॉवेल ने अपने लोकोक्ति-संग्रह की एक 'चतुष्पदी' में इस तथ्य को साग्रह स्वीकार किया है। उनकी निम्नलिखित पंक्तियाँ पठनीय हैं—जनता की उक्ति जनार्दन की उक्ति है और लोकोक्तियाँ जनार्दन की उक्ति के अतिरिक्त और हैं ही क्या? और जो जनता-जनार्दन की उक्तियाँ हैं उनकी सत्यता और प्रभावात्मकता में भला सन्देह ही कौन कर सकता है?[56]

शर्मा इस सम्बन्ध मे अपने विचार प्रकट करते हुए लिखते हैं कि लोकोक्तिया लोक प्रचलित होती हैं। बिना लोक-प्रसिद्धि और लोक-मान्यता के कोई भी उक्ति चाहे वह सारगर्भित हो या सक्षिप्त, लोकोक्ति हो ही नही सकती। जो उक्तिया लोकप्रचलित नही होती; वे प्राज्ञोक्तिया आदि कही जाती हैं क्योकि वे सामान्य लोक वाणी से दूर रहती हैं।[61] लोक-मान्य एव लोक-विश्रुत होकर ही लोकोक्ति पूर्णता को प्राप्त करती है। लोकोक्ति के अन्य तत्वो मे सक्षिप्तता-सारगर्भितता आदि की भूमिका, इसके निर्माण मे गौण रूप मे होती है; लोक-स्वीकृति से ही लोकोक्ति का आत्म तत्त्व सिद्ध होता है।

उपर्युक्त विभिन्न मन्तव्यो के परिप्रेक्ष्य मे अध्ययन का साराश इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

(क) लोकोक्ति लोक की उक्ति है।

(ख) व्यष्टि की सम्पत्ति जब समष्टि की सम्पत्ति बन जाती है, तब लोकोक्ति का रूप धारण करती है।

(ग) लोक-प्रियता इसका प्राण तत्त्व है। इसके अभाव मे लोकोक्ति का स्वरूप नष्ट हो जाता है।

(घ) सक्षिप्तता-सारगर्भितता आदि से युक्त होने पर भी लोक-प्रसिद्धि के अभाव मे लोकोक्ति प्राज्ञोक्ति मात्र बनकर रह जाती है।

(ङ) लोकानुभव पर आधारित लोकप्रिय लोकोक्ति की सत्यता एव प्रभावात्मकता असदिग्ध है।

निष्कर्षत कहा जा सकता है कि लोकप्रियता लोकोक्तिमात्र की अपरिहार्य विशेषता है।

मानवीय अनुभव एवं उनकी सत्यता—मनुष्य निसर्गतः ज्ञान का आदान-प्रदान करता है। लोकोक्ति इसका उपयुक्त माध्यम है। जीवन के विविध अनुभव, व्यवहार, नीति, शिक्षा, उपदेश, कथा, घटना आदि का लोकोक्ति मे सूत्ररूप मे उद्‌घाटन होता है। लोकोक्तियाँ ज्ञान का भण्डार हैं। इसमे मानव-जीवन के युग-युग की अनुभूतियो का परिणाम और निरीक्षण-शक्ति अन्तर्निहित होती है। काशी निवास के सम्बन्ध मे एक लोकोक्ति प्रसिद्ध है—'राड साड सीढी सन्यासी इनसे बचे तो सेवें कासी'। कहने की आवश्यकता नहीं कि इसमे बहुत कुछ ज्ञान का अश विद्यमान है। इसका प्रकटीकरण व्यक्ति को हानि से बचने के लिए सचेष्ट करता है। लोकोक्तिकार ने स्थानीय चिर अनुभव के पश्चात् ही इसका निर्माण किया होगा। इसी प्रकार कान्यकुब्ज ब्राह्मणों की छुआछूत की भावना लोकविख्यात है। वियोगी हरि इस सम्बन्ध में लिखते हैं—

हैं जह 'आठ कनोजिया नौ चूल्हे' की रीति।
तहा परस्पर प्रीति की, कहाँ पआवत नीति॥[62]

उनकी आपस मे बहुत अधिक फूट के परिणामस्वरूप लोकोक्ति बन गई—'आठ कनौजिया नौ चूल्हे'। जहा ऐक्य का अभाव व भेदभाव की प्रधानता होती है, वहा यह प्रयुक्त होती है।

अपूर्णता की द्योतक संस्कृत की एक लोकोक्ति है—'अर्द्धं घट घोषमुपैति नूनम् ।' इसका हिन्दी रूपान्तर है—"अध जल गगरी छलकत जाय' ।[63] जिसके पास अल्प धन या विद्या होती है वह उसका प्रदर्शन करता रहता है। सूर ने भी इसका प्रयोग किया है—'जैसे घट पूरन न डोलै, अध भरो डगडोर ।[64] यही भाव अन्य लोकोक्ति 'थोथा चना बाजे घना' द्वारा भी प्रकट होता है। अष्टछाप के कवि परमानन्द ने अपनी कल्पना की ऊंची उड़ान भर कर इस का नवीन प्रयोग किया है—इतराइ चली थोरे पानी ज्यों भादों की नदिया। कहने की आवश्यकता नही कि इस लोकोक्ति का प्रयोग परमानन्ददास के प्राकृतिक ज्ञान का परिणाम है।

संस्कृत की एक अन्य लोकोक्ति है—'शठे शाठ्यं समाचरेत्'। इसमे यथायोग्य व्यवहार की शिक्षा दी गई है। 'आग्ल भाषा मे इसका प्रयोग 'टिट फॉर टेट' के रूप मे होता है। हिन्दी मे इसका रूप—जैसे को तैसा है। सूर ने भी कहा है—जो जैसो तासों त्यो चलिये ।[65] वृन्द यथायोग्य आचरण के लिए भ्रमर का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं—

जो जैसो तिहिं तैसियै, करियै नीति प्रकास।
काठ कठिन भेदै भ्रमर, मृदु अरविन्द निवास ।।[66]

व्यावहारिक नीति की यह शिक्षा मानवीय अनुभव पर ही आधारित है।

घाघ और भड्डरी के नाम से हिन्दी मे बहुत सी लोकोक्तिया प्रचलित हैं। इन मे कृषि के लिए ऋतु सम्बन्धी उपयोगी बातें कही गयी हैं। इसमें सन्देह नही कि घाघ और भड्डरी ने अपनी पैनी निरीक्षण शक्ति के बल पर ऋतु सम्बन्धी तथ्यो का अनुसधान करके ही इन लोकोक्तियो का निर्माण किया होगा। जब विज्ञान की इतनी उन्नति नही हुई थी—ऋतु सम्बन्धी तथ्यो को जानने के लिए वेधशालाए नही बनी थी, उस समय लोग अपने चिर सचित अनुभव और निरीक्षण-शक्ति के द्वारा आगामी दिनो मे ऋतु-परिवर्तन की घोषणा किया करते थे। यह परम्परा सभवत बहुत प्राचीन है। आकाश मे चमकने वाली चपला के रग को देखकर निरीक्षण शक्ति-सम्पन्न व्यक्ति प्रभजन आने तथा अकाल पडने की सूचना देते हैं—

वाताय कपिला विद्युत्, आतपायाति लोहिनी।
कृष्णा भवति सस्याय, दुर्भिक्षाय सिता भवेत् ।।

प्राचीन काल के ये ऋतु-विशेषज्ञ किसी यन्त्र की सहायता से नहीं, अपितु अपनी निरीक्षण-शक्ति के द्वारा ही ऋतुओ के परिवर्तन को उद्घोषित करते थे।[67] लोकोक्ति में चिरकालीन मानवीय अनुभव सचित रहता है, किन्तु इसकी सत्यता के विषय मे देश-विदेश के विद्वानो मे मतैक्य नही है। स्टीवेन्सन ने तो यहां तक कह दिया था कि निरपेक्ष सत्य जैसी कोई वस्तु नही, हमारे सब सत्य अर्द्धसत्य मात्र हैं। इसीलिए लोकोक्तियो का सत्य यदि सार्वदेशिक और सार्वकालिक न हो, तो इसमे कोई आश्चर्य की बात नही। मार्ग-दर्शन के लिए लोकोक्तिया श्रेष्ठ साधन का काम देती हैं, किन्तु कोई उन्हें चरम सत्य का पर्याय समझने की भूल न करे। इनमे वैज्ञानिक निष्कर्ष का सा सत्य नही होता। वे सत्य के लिए सकेत मात्र उपस्थित करती है। टी० टी० मुगर के शब्दो मे लोकोक्तिया अर्द्ध सत्य मात्र

होती हैं।[68] इनके विपरीत इमर्सन लोकोक्ति में निहित मानवीय अनुभव को सर्वथा सत्य स्वीकार करते हैं। उनके विचारानुसार जो जाति जिन लोकोक्तियों का प्रयोग करती है, उस जाति के लोग अपनी लोकोक्तियों को निरपेक्ष सत्य के रूप में ही ग्रहण करते हैं।[69] इमर्सन के निरपेक्ष सत्य को जिन्होंने स्वीकार नहीं किया, वे सत्य की सापेक्षता स्वीकार करते हैं। कुछ लोगों के अनुसार सत्य व्यक्ति सापेक्ष, समय सापेक्ष तथा परिस्थिति सापेक्ष होने के कारण निरपेक्ष सत्य का अस्तित्व स्वीकार्य नहीं है। यथा महाभारत की एक लोकोक्ति है—'अश्वत्थामा हत नरो वा कुंजरो वा।' यहां सत्य असत्य पर आधारित होकर भी युधिष्ठिर की झूठी अनभिज्ञता को प्रच्छन्न कर सत्यवादी की सत्यता की कोटि में आ गया। इसकी वस्तुत निरपेक्षतारहित सापेक्षता ही प्राय मान्य रही है। जीवन के सत्य की विविध रूप हैं, जिनको अपने-अपने अनुभवों के आधार पर लोकोक्ति में स्थान मिला है, अतएव परस्पर विरोधी भावों को प्रकट करने वाली उक्तियां भी प्राप्त हो जाती हैं। यथा तीन व्यक्तियों का एक साथ चलना कुछ व्यक्तियों के लिए अपशकुन होता है। उनके अनुसार 'तीन काणे माने गए हैं'। किन्तु इसके विपरीत शकुन की भी परिकल्पना की गई है—ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश अर्थात् त्रिदेव की कल्पना के रूप में ये शुभ के प्रतीक बन गए हैं। इस भिन्नता का कारण जीवन में अनुभूति एवं निरीक्षण का वैविध्य है। आत्मानुभूति और निरीक्षण का जीवन में विशेष स्थान है। सार्वजनीन अनुभूति और निरीक्षण सामान्य सिद्धान्तों को जन्म देते हैं। लोकोक्तियों में हमें इस भूमि पर आधारित निश्चित सिद्धान्तों के दर्शन होते हैं।[70] इन सिद्धान्तों की सीमा देश काल आदि से परिबद्ध होती है। श्री श्याम परमार के अनुसार लोकोक्तियों म सत्य स्पष्ट है, फिर कहावतें पूर्ण सत्य तो नहीं कही जा सकतीं। उसका संकेत भर कहावतें प्रस्तुत करती हैं। एक स्थान-विशेष का सत्य व दूसरे स्थान-विशेष का सत्य पूर्णत नहीं होगा। अपने स्थान की सीमा और तत्कालीन प्रभाव उसमें होगा।[71] यदि लोकोक्तियों में निहित पूर्ण या अपूर्ण, वैज्ञानिक अथवा विज्ञान-रहित सत्यता का प्रश्न छोड दिया जाय, तो भी विद्वानों ने इनमें आंशिक-पाक्षिक रूप से अथवा अर्द्धसत्य को तो स्वीकार किया ही है। यथार्थत लोकोक्ति के लोक-प्रचलन का हेतु इसमें निहित मानवीय अनुभव एवं उनकी सत्यता है, जिनके अभाव में सारहीन एवं प्रभावशून्य होकर उक्ति मात्र ही रह जाती है। अत कहा जा सकता है कि लोकोक्ति किसी गहन अनुभूति एवं महत्वपूर्ण तथ्य की चिन्तनापूर्ण अभिव्यक्ति है। इनमें मानव जीवन के सुख-दु ख, हर्ष विषाद, रुचि-अरुचि, ईर्ष्या-लोभ आदि सभी की सूत्र रूप में व्याख्या होती है। जातियों के आचार विचार, रीति-रिवाज, मनन चिन्तन, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक, सांस्कृति जीवन—सभी की अभिव्यंजना इनमें होती है। सांसारिक व्यवहार पटुता का जैसा निदर्शन इनमें मिलता है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। इनम जीवन के सत्य बडी खूबी के साथ प्रकट होते हैं।[72]

लोकोक्ति की कुछ अन्य विशेषताएं एवं परिभाषाएं—लोकोक्ति की एक विशेषता है प्रसंगानुकूल उपयुक्तता अथवा इसका यथावसर प्रयोग। लोकोक्ति की यह विशेषता इसके प्रयोग पर आधारित है। प्रसंग क अनुरूप प्रयुक्त होकर लोकोक्ति प्रभावशाली बन

जाती है। डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल लोकोक्ति को परिभाषित करते हुए लिखते हैं—लोकोक्तिया मानवीय ज्ञान के चोखे और चुभते हुए सूत्र हैं। वे मानवीय ज्ञान के घनीभूत रत्न हैं, जिन्हें बुद्धि और अनुभव की किरणो से सदा फूटने वाली ज्योति प्राप्त होती है।[73] डॉ० अग्रवाल ने यहा लोकोक्ति की आर-पार कर जाने वाली चुभन अथवा उसकी प्रभावोत्पादकता प्रतिपादित करने के लिए अन्य गुणो के साथ इन्हें 'चुभते हुए सूत्र' कहकर प्रसगानुकूलता एव लोकोक्ति की प्रभावात्मकता का सकेत किया है। श्री विक्रमादित्य मिश्र भी लोकोक्ति के यथावसर प्रयोग पर बल देते हुए लिखते हैं—चूकि ये सूत्र-वाक्य (कहावत) जीवन के सार्वभौम सत्य—सुख दु ख, जीवन-मरण आचार-विचार, रीति-नीति, खान-पान, शकुन-अपशकुन, खेती-बारी, आहार-विहार, पशु-पक्षी, जीव-जन्तु, आदि सभी से सम्बद्ध हैं, इसलिए ये सामान्य अथवा सर्वमान्य उक्तियो के रूप में प्रचलित हो गए और चूकि ये उक्तिया यथावसर परस्पर कही सुनी जाती रही, इसलिए इन्हें लोक-जीवन मे 'कहावत' नाम से अभिहित किया गया।[74]

लोकोक्ति का प्रयोग यथाप्रसग किसी तथ्य, मान्यता और स्थिति में से किसी एक के पोषण आदि के लिए होता है। डॉ० कन्हैयालाल सहल प्रयोग की दृष्टि से लोकोक्ति की परिभाषा करते हुए लिखते है—अपने कथन की पुष्टि मे किसी शिक्षा या चेतावनी देने के उद्देश्य से किसी बात को किसी आड मे कहने के अभिप्राय से अथवा किसी के उपालम्भ देने व किसी पर व्यग्य कसने आदि के लिए अपने मे स्वतन्त्र अर्थ रखने वाली जिस लोक प्रचलित तथा सामान्यत सारगर्भित सक्षिप्त एव चटपटी उक्ति का प्रयोग लोग करते हैं, उसे लोकोक्ति अथवा कहावत का नाम दिया जा सकता है।[75] डॉ० सहल ने लोकोक्ति का प्रयोग अपने कथन की पुष्टि के रूप मे माना है, वहा डॉ० भोलानाथ तिवारी ने इसका प्रयोग किसी बात की पुष्टि अथवा विरोध के लिए माना है। डॉ० तिवारी ने लोकोक्ति की परिभाषा इस प्रकार प्रस्तुत की है—लोकोक्ति अनुभव, ऐतिहासिक या पौराणिक कथाओ या प्राकृतिक नियमो पर आधारित ऐसी सक्षिप्त और सारगर्भित लोक प्रचलित उक्ति या कथन है, जिसका कि उपदेश किसी बात की पुष्टि या विरोध आदि के लिए होता है।[76] प्रस्तुत परिभाषा मे परिभाषाकार ने निम्न तथ्यो को प्रस्तुत किया है—

(क) लोकोक्ति के आधार मानवीय अनुभव, प्राचीन कथाए व प्राकृतिक नियम हैं।
(ख) यह सक्षिप्त एव सारगर्भित उक्ति है।
(ग) लोक प्रचलित होने पर कोई उक्ति लोकोक्ति का रूप धारण करती है।
(घ) इसका प्रयोग किसी बात की पुष्टि या विरोध आदि के लिए होता है।

इनमे प्रथम एव अन्तिम तत्त्व जो कि लोकोक्ति के आधार एव प्रयोग हेतु हैं, पर विशेष बल दिया है। प्राचीन कथाओ को ही लीजिए। अनेक लोकोक्तियां प्राचीन कथाओ पर आधारित होती हैं, उदाहरणार्थ दुर्योधन द्वारा कथित महाभारतकालीन लोकोक्ति है—'सूच्यग्रमपि नैव दास्यामि बिना युद्धेन केशव।' यह उक्ति सुप्रसिद्ध है, इसे ऐतिहासिक

महत्त्व की उक्ति कहा जा सकता है। इसी प्रकार श्रीकृष्ण की दुर्योधन के प्रति उक्ति सूरदास के शब्दों मे है—'द्वै विध भोजन कीजै राजा। विपत्ति परै कै प्रीत।' कुंभनदास की सुप्रसिद्ध उक्ति—'भक्त कौ (भक्तनि कौ) कहा सीकरी काम' भी ऐतिहासिक महत्त्व की लोकोक्ति है। इसमे जहा भक्त प्रवर कुंभनदास की निस्पृहता एव निर्भयता व्यंजित है, वहा ऐतिहासिक घटना पर आधारित होने के कारण यह उक्ति बहुत महत्त्वपूर्ण बन गई है।

डॉ० तिवारी ने लोकोक्ति का अन्य आधार प्राकृतिक नियम स्वीकार किया है। अनेक लोकोक्तिया प्राकृतिक नियमो पर आधारित होती हैं, यथा समय एव परिस्थिति के अनुसार कार्य करने की प्रेरणा देने वाली एक लोकोक्ति है—'जैसी चले बयार, तब तैसी दीजै ओट।' कवि वृन्द ने इसका प्रयोग इस प्रकार किया है—

बनती देख बनाइए, परन न दीजै खोट।
जैसी चले बयार तब, तैसी दीजै ओट ॥[77]

'बयार' शब्द वायु का वाचक है। वात या वायु प्रकृति का महत्त्वपूर्ण उपादान है। 'जल' को लीजिए। पचतत्त्वात्मक सृष्टि में 'जल' का स्थान महत्त्वपूर्ण है। वर्षा पर आधारित अनेक लोकोक्तिया हैं। सावन-भादो मास पर आधारित एक लोकोक्ति है—'जैसा सूखा सावन, वैसे भरा भादों।'[78] जब किसी व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को सुख प्राप्त होने के स्थान पर बराबर दुःख ही भोगना पड़ता है, तब इस प्राकृतिक लोकोक्ति का प्रयोग होता है। अनेक लोकोक्तिया प्राकृतिक नियमो पर आधारित होती हैं। डॉ० तिवारी का यह कथन कि लोकोक्ति अनुभव, ऐतिहासिक-पौराणिक कथाओ या प्राकृतिक नियमो पर आधारित है, पूर्णतः स्वीकार्य इसलिए नही कि क्योकि इसमे अव्याप्ति दोष है। लोकोक्ति अनुभव पर आधारित है, इसमे सन्देह नही, किन्तु यह मानवीय अनुभव अनेकविध है, जिसका एक रूप प्रकृति भी है, अतः उनका यह आधार-निर्धारण दोष-पूर्ण हो जाता है। प्रकृति के अतिरिक्त लोकोक्ति लोक एव शास्त्र पर भी आधारित होती है। कुछ लोकोक्तियो का आधार जहा लोक-न्याय है, वहा अनेक शास्त्रीय कथन लोकोक्ति के रूप मे परिवर्तित हो गए हैं। अनुभवो का वैविध्य लोकोक्ति को व्यापक रूप प्रदान करता है। डॉ० तिवारी का यह कथन कि इसका उपदेश किसी बात की पुष्टि या विरोध आदि के लिए होता है, चिन्तन की अपेक्षा रखता है। उपदेश के अतिरिक्त लोकोक्ति में आलोचना का रूप भी प्राप्त होता है। विशेषतः जहा पुष्टि न होकर विरोध का स्वर मुखर होता है, लोकोक्ति मे उपदेशात्मकता लुप्त हो जाती है। डॉ० तिवारी ने इसके प्रयोग के दो हेतु पुष्टि एव विरोध स्वीकार किए हैं। कुछ लोकोक्तियो मे दोनो मे एकत्र दर्शन होते हैं। इनमे एक की पुष्टि तथा दूसरे का विरोध होता है। उदाहरणार्थ संस्कृत की एक लोकोक्ति है—'पंक तु नभसि क्षिप्त्वा क्षेप्तु पतति मूर्धनि।' अर्थात् आकाश पर कीचड़ फेंकने वाले व्यक्ति पर ही कीचड़ गिरता है। इसका भाव है यदि कोई व्यक्ति सज्जन व्यक्ति की निन्दा करे तो सज्जन निन्दनीय नहीं होता, प्रत्युत निन्दक स्वयं घृणा का पात्र बन जाता है। इसी भाव को स्पष्ट करने वाली एक लोकोक्ति है—'धूल डालने से सूरज

नहीं छिपता।[79] इसमे जहां सज्जन की सज्जनता की पुष्टि है, वहां दुर्जन की दुर्जनता के प्रति विरोध प्रकट किया गया है। एक लोकोक्ति है—"कुत्ते भूंकते रहते हैं और कारवां (हाथी) चलता रहता है।[80]" तुच्छ लोगों की आलोचना की चिन्ता न करते हुए बडे लोग अपना काम करते रहते हैं। यहां भी बड़े व्यक्तियो की कार्य पद्धति की पुष्टि एव तुच्छ व्यक्तियो की आलोचना के प्रति विरोध प्रकट किया गया है।

लोकोक्तियो का प्रयोग पुष्टि-विरोध आदि भिन्न-भिन्न दृष्टियो से भी होता है। पुष्टि को ही लीजिए। इसमे किसी बात का पोषण अथवा मण्डन होता है। दृढ़ प्रतिज्ञ व्यक्ति प्राणपण से अपनी प्रतिज्ञा निभाते हैं, उसे भग नही करते। उनकी दृढ़ता की पुष्टि मे एक लोकोक्ति है—

सिंह गमन सुपुरुष वचन, कदली फिरै इक बार।
तिरिया तेल हमीर हठ, चढ़े न दूजी बार।।[81]

कवि नन्ददास ने भ्रमर के माध्यम से अधिकारी के महत्त्व की चर्चा की है—

अधिकारी घौं भलौ रस जानें। अलि बिन कमलहिं को पहचानै।।'[82]

विरोध पुष्टि का प्रतिरूप है। इसका स्वर खण्डनात्मक होता है। यथा परछिद्रान्वेषण को ही लीजिए। इस प्रवृत्ति को घृणार्ह एवं हेय माना गया है। इलाचन्द्र जोशी ने पर-छिद्रान्वेषी व्यक्ति के प्रति लोकोक्ति के माध्यम से अपना विरोध प्रकट किया है—'काली पतीली अपनी ही तरह काली बलटोही को 'काला' कहती है।' एक दोषी व्यक्ति का दूसरे दोषी व्यक्ति की आलोचना करने पर इसका प्रयोग होता है।

उपयोग की दृष्टि से डॉ० तिवारी की दो दृष्टिया—पुष्टि एव विरोध के द्वारा सभी प्रकार की लोकोक्तियो को इनके अन्तर्गत समाहित नही किया जा सकता। डॉ० सत्येन्द्र द्वारा विवेचित लोकोक्तियो के उपयोग की चार दृष्टिया साधारणतः मान्य रही हैं। ये हैं—पोषण, शिक्षण, आलोचन एव सूचन। लोकोक्तियो के प्रयोग की दृष्टि से डॉ० रमेशचन्द्र का यह कथन अपेक्षाकृत सम्यक् प्रतीत होता है—लोकोक्तियो के विश्लेपण करने से ज्ञात होता है कि इनमे संक्षिप्तता, सारगर्भितता, सप्राणता, लोकानुभव, लोकप्रियता, परम्परित ज्ञान, हास्य, व्यग्यात्मकता, आलकारिकता, सूत्रात्मकता, चमत्कार, प्रभावोत्पादकता, सत्यता, नीति, आलोचन, सूचन, निर्देश एव पोषण आदि तत्त्व मिलते हैं।[83] डॉ० सत्येन्द्र द्वारा प्रतिपादित पोषण, शिक्षण, आलोचन एव सूचन चार दृष्टियो मे शिक्षण के स्थान पर डॉ० रमेश चन्द्र ने नीति का तथा 'सूचन' के साथ 'निर्देश' का प्रयोग किया है, वह सूचन के ही निकट है। उपयोग सम्बन्धी चार दृष्टिया ही विचारको ने प्रकारान्तर से स्वीकार की हैं। डॉ० रमेशचन्द्र ने लोकोक्ति मे निहित हास्य, व्यग्यात्मकता, आलकारिकता आदि की चर्चा के साथ अन्य तत्त्व चमत्कार स्वीकार किया है। चमत्कार अथवा रमणीयता की सृष्टि करने वाली लोकोक्ति मे कही अलकार के माध्यम से सौन्दर्य के दर्शन होते हैं, तो कही हास्य-व्यग्य आदि के द्वारा अद्भुत चमत्कार उत्पन्न होता है। लोकोक्ति मे निहित इस सौन्दर्य का उद्घाटन ही हमारे शोध-प्रबन्ध का विषय है। डॉ० रमेशचन्द्र ने जिन तत्त्वो को छोड दिया है, मुख्यतः वे हैं—

शब्द शक्ति, रस, ध्वनि, वक्रोक्ति आदि। लोकोक्ति मे जहा रसात्मकता होती है वहा उक्ति वैचित्र्य के भी दर्शन होते हैं। ध्वन्यात्मकता लोकोक्ति की एक विशेषता है। लक्षणा व्यजना शब्द शक्ति के माध्यम से लोकोक्ति अपने अर्थ गाम्भीर्य को प्रकट करती है। यही नही बिम्ब-विधान के सफल सयोजन के द्वारा लोकोक्ति एक चित्र उपस्थित करती है जिससे जहा इसके अर्थ का स्पष्टीकरण होता है, वहा इसका भाव भी हृदयगम हो जाता है तात्पर्य यह है कि लोकोक्ति मे निहित सौन्दर्य तत्त्व का दर्शन विभिन्न दृष्टियो द्वारा किया जा सकता है। शब्द शक्ति की दृष्टि से विचार करते हुए डॉ० रमेशचन्द्र लिखते हैं—लोकोक्तिया वाच्यात्मक, लक्ष्यात्मक एव व्यग्यात्मक तीनो ही प्रकार की होती हैं, तुलनात्मक दृष्टि से व्यग्यात्मक लोकोक्तियां सख्या मे सबसे अधिक होती हैं।[84] पाश्चात्य विचारको ने भी लोकोक्तियो मे शब्द शक्ति या अभिप्राय की अनिवार्यता स्वीकार की है।[85]

लोकोक्ति के अन्य तत्त्वो मे डॉ० मदन लाल शर्मा ने अपने शोध प्रबन्ध में उपर्युक्त तत्त्वो के अतिरिक्त तीन अन्य तत्त्वो को अनिवार्य माना है। ये हैं—1 सरलता, 2 उपयोगिता, और 3 पूर्ण वाक्य या वाक्य समूह का प्रयोग।[86] प० मुरलीधर व्यास ने अपनी परिभाषा मे लोकोक्ति को घरेलू भाषा कहकर इसकी सरलता' की ओर सकेत किया है।[87] डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय के मतानुसार लोकोक्तियाँ बडी सरल भाषा मे निबद्ध होती हैं जिससे सुनते ही इनका अर्थ हृदयगम हो जाता है। इनकी यही सरलता इनके अतिशय प्रभाव उत्पन्न करने का कारण है। जो वस्तु अर्थ काठिन्य के कारण समझ मे नही आती उसका प्रभाव हृदय पर नही पडता। परन्तु लोकोक्तिया अपनी सरसता और सरलता के कारण हृदय पर सीधे चोट करती हैं। जैसे—

नसकट पनही, बतकट जोय
जो पहिलौठी बिटिया होय।
पातर कृषी बौरहा भाय,
घाघ कहे दुख कहा समाय।

यह बात किसी से छिपी नही है कि पैर का काटने वाला जूता और (पति की) बात काटने वाली स्त्री कितनी दुखदायी होती है। इसके साथ ही कमजोर फसल और शत्रुता रखने वाला भाई भी व्यक्ति के कष्ट के कारण हुआ करते हैं। घाघ ने इन्ही बातो का बडी सीधी सादी भाषा मे कहा है जिसका प्रभाव ग्रामीण जनो के हृदय पर अत्यन्त सहजता से होता है।[88] अत सरलता को लोकोक्ति की लोकप्रियता का यदि सहायक गुण स्वीकार किया जाए, तो आपत्ति न होगी।

उपयोगिता लोकोक्ति का एक अनिवार्य तत्त्व है। प्राय देखा जाता है कि लोकोक्ति की उपयोगिता समाप्त हो जाने पर इसका प्रचलन भी अवरुद्ध हो जाता है। डा० शर्मा ने लोकोक्तियो मे यह उपयोगिता दो प्रकार की मानी है—

(1) शाश्वत उपयोगिता जो सार्वदेशिक और सार्वकालिक होती है।

(2) अशाश्वत उपयोगिता जो समय और स्थानानुसार परिवर्तित होती रहती

है। शाश्वत उपयोगिता मे एक 'सार्वभौम सत्य' निहित रहता है। जैसे—'एक हाथ से ताली नहीं बजती।' अतः उसका कभी लोप नही होता। अशाश्वत लोकोक्ति का उपयोग समय के व्यतीत होने के साथ ही साथ समाप्त भी हो जाता है। जैसे—'इफ्रिनेच्छा बलीयसी' आदि।[89] उपयोगी न रहने के कारण ऐसी लोकोक्तिया काल कवलित हो जाती हैं।

डॉ० शर्मा ने लोकोक्ति का अन्तिम तत्त्व पूर्ण वाक्य या वाक्य समूह का प्रयोग माना है। 'पूर्ण वाक्य' या 'पूर्ण कथन' के बिना लोकोक्ति मुहावरे की कोटि मे चली जाएगी क्योंकि 'मुहावरा' एक 'वाक्यांश' मात्र ही होता है। लोकोक्ति और मुहावरे मे प्रायः अनेक गुण तो समान ही होते हैं, परन्तु केवल 'वाक्य' और 'वाक्यांश' का ही अन्तर रहता है।[90] मुहावरे के साथ लोकोक्ति का अन्तर स्पष्ट करते हुए इस विषय पर विस्तार पूर्वक आगे विचार किया गया है।

लोकोक्ति की अन्य विशेषताओ मे एक विशेषता है—तुक साम्य। तुकान्त होने पर लोकोक्ति शीघ्र ही याद हो जाती है। मुख-सुख लोकोक्ति को तुकान्त बनाने मे सहायक होता है। तुकान्त लोकोक्ति चिरस्थायित्व प्राप्त करती है और लोक-जिह्वा पर नर्तन करके लोकप्रियता भी प्राप्त कर लेती है। लोकोक्तियां गद्यबद्ध और पद्यबद्ध दोनो प्रकार की होती हैं। गद्यबद्ध लोकोक्ति शुष्क वाक्य से भिन्न होती है। इसमे एक लय होनी है। यदि लय का संगीत न हो तो भी लयाश (रिदिम) अवश्य विद्यमान होता है। इस लय को तुक द्वारा सुविधा प्राप्त होती है, परिणामतः लोकोक्ति चमत्कारपूर्ण बन कर जन-वाणी मे मुखरित हो जाती है और श्रोता अथवा पाठक को अपनी इस आकर्षण शक्ति द्वारा आकर्षित कर लेती है। एक लोक प्रसिद्ध उक्ति है—बनिया जान-पहचान वाले को और ठग अनजान को ठगता है—'बनिया मारे जान, चोर (ठग) मारे अनजान।'[91] किन्तु सर्वत्र ऐसा नही होता। कही-कही सतुलित वर्णों की आवृत्ति से विशिष्ट शब्द-ध्वनि निर्मित होकर लयाश उत्पन्न करती है। यथा—'सैया भए कोतवाल अब डर काहे का'।[92]

लोकोक्ति मे अप्रस्तुत प्रयोग भी होता है। इस अप्रस्तुत प्रयोग के द्वारा प्रस्तुत विषय का प्रतिपादन किया जाता है। उदाहरणार्थ—'नाच न जाने बावरी कहे आगन टेढ़ो।' यहा कर्म करने की कुशलता का सर्वथा अभाव है किन्तु अपनी अकुशलता या अनिपुणता को प्रच्छन्न रखने के अभिप्राय से किसी अनुपयुक्त कारण का उल्लेख किया गया है। सामान्यतः विस्तृत होने के कारण आंगन नृत्य के उपयुक्त होता है किन्तु उसमें दोष बनाकर नृत्य न करने की विवशता को प्रकट किया गया है। इस प्रकार यहा प्रस्तुत है कर्म करने की अनिपुणता के परिणामस्वरूप तत्कार्य के साधन को व्याज से अनुपयुक्त बनाकर अपनी अकुशलता को प्रच्छन्न रखना तथा अप्रस्तुत है नर्तन की अज्ञानता से आगन को मिथ्या ही दोषयुक्त बनाना। ऐसी लोकोक्तियो मे अप्रस्तुत के माध्यम से प्रस्तुत विषय का प्रतिपादन किया जाता है, किंतु लोकोक्ति और अप्रस्तुत विधान एक ही शब्द के दो पर्याय नहीं, क्योंकि हर लोकोक्ति अप्रस्तुत प्रयोग नही है और हर अप्रस्तुत-विधान लोकोक्ति नहीं है। कुछ ऐसी भी लोकोक्तिया होती हैं जिनमे मात्र प्रस्तुत का ही प्रति-

पादन होता है, यथा—"ईश्वरेच्छा बलीयसी', 'पराधीन सपनेहुं सुख नाहीं'[93] सूर की एक उक्ति भी इसी प्रकार की है—अति सर्वत्र भलो नहीं, कहिगे सन्त अनन्त। रहीम ने भी कहा है—

रहिमन अति न कीजिए, गहि रहिए निज कानि।
सहिजन अति फूलै डारि पात की हानि।[94]

इसी प्रसंग में यह भी उल्लेख्य है कि लोकोक्ति का यथार्थ स्वरूप व उसमे निहित व्यंग्य तभी प्रस्फुटित होती है जब उसका प्रसंगानुकूल प्रयोग किया जाए। यथा—'गोरस बेचन हरि मिलन एक पंथ दो काज' मे मात्र 'एक पन्थ दो काज' लोकोक्ति का प्रसंग रहित प्रयोग किया जाए तो वह प्रभावोत्पादक नही होगी, किन्तु प्रसंगवशात् गोपिकाओं के कथन रूप मे यह लोकोक्ति 'एक पन्थ दो काज' इसलिए सार्थक है क्योंकि एक साथ ही नवनीत-विक्रय एवं श्रीकृष्ण-दर्शन का द्विगुणित लाभ को बतलाया जाना अभिप्रेत है।

डॉ० सत्येन्द्र ने लोकोक्ति की निम्न विशेषताएं स्वीकार की हैं—

(क) लोकोक्ति साधारणतः लघु होती है, यथा—अगायौ सो सवायो।

(ख) गद्य के अतिरिक्त पद्यबद्ध भी होती हैं तथा सतुक होती हैं, यथा—'प्यारी आप ही से प्यारी।' कभी-कभी शब्द-ध्वनि की संतुलित आवृत्ति से छन्द चरण निर्मित हो जाता है—'घर की खाड किस किसी लागै, बाहर कौ गुड मीठो।'

(ग) अधिकाश कहावतें अन्योक्तियां होती हैं। इससे अभिप्राय विस्तत हो जाता है।—'आगे नाथ न पीछे पगहा।' यह बैल से सम्बन्धित है, पर अनाथ आवारा के लिए ठीक बैठेगी। उक्ति मे वर्णित 'विशेष' मे जो 'सामान्य' रहता है, उसी 'सामान्य' के अर्थ मे उसका चाहे जहा उपयोग किया जा सकता है।

(घ) विशेष का संयोजन और उसके द्वारा वैचित्र्य का विकास—इसमे असाधारण कल्पना होती है, यथा—'छदाम की बुढिया।' बुढिया छदाम कैसे हो सकती है? ऐसे स्थलो पर कल्पना की संभावना-असंभावना का ध्यान नही, वैचित्र्य का प्राधान्य होता है। ऐसी कहावतें (ब्रज मे) बहुत कम, अपवाद स्वरूप ही हैं।

(च) प्रकृति का गम्भीर निरीक्षण एवं तत्सम्बन्धी संचित अनुभव—ये ज्ञान कोश की भांति कृषि आदि मे सहायक हैं। पशु-स्वास्थ्य-शुभाशुभ आदि के सम्बन्ध मे कही गई लोकोक्तियां ज्ञानवर्द्धक होती हैं।

(छ) घटना या कहानी से सम्बन्धित—यथा—'कायस्थ का बच्चा कभी न सच्चा, जो सच्चा तो गधे का बच्चा।'[95]

उपर्युक्त विवेचन मे डॉ० सत्येन्द्र ने लोकोक्ति की जिन विशेषताओं से अवगत

कराया है, वे प्राय पूर्वोक्त ही हैं। प्रथम विशेषता सक्षिप्तता है, द्वितीय तुकान्त। तृतीय और चतुर्थ विशेषता का अन्तर्भाव लोकोक्ति की आलकारिकता एव उक्ति-वैचित्र्य के अन्तर्गत हो जाता है। अन्तिम दोनो विशेषताए लोकोक्ति के विषयगत आधार प्रकृति एव कथा के अन्तर्गत पूर्वत वर्णित हैं। डॉ० सत्येन्द्र का यह प्रतिपादन इसलिए महत्त्वपूर्ण है, क्योकि इन्होने लोकोक्ति की प्रमुख विशेषताओ का पृथक्-पृथक् सोदाहरण निरूपण किया है। डॉ० गयासिह 'तुलसी-काव्य की लोक तात्त्विक सरचना' नामक पुस्तक मे लोकोक्ति की निम्न विशेषताए प्रदर्शित करते हैं—

लोकोक्तियाँ समाज-नीति, धर्म, अनुभव, व्यवहार, शिक्षा, उपदेश, विश्वास, रीति, ज्ञान आदि से सवलित रहती हैं। इनका स्वरूप घटनात्मक, कथात्मक, व्यग्यात्मक, वस्तुनिर्देशात्मक, सवादात्मक और उपदेशात्मक होता है। ये गद्यात्मक और पद्यात्मक दोनो रूपो मे होती हैं और प्राय एक विचार, भाव, घटना आदि से सदर्भित रहकर पूर्ण वाक्य या सार्थक पद-समूहो मे व्यक्त की जाती हैं। एक ही मूल की विभिन्न भाषाओ तथा बोलियो मे कुछ सामान्य हेर फेर से इसका ढाँचा एक-सा रहता है। भाषा के कवि इनके माध्यम से अपने काव्यात्मक कथनो को अधिक तीव्र तथा प्रेषणीय बनाते एव उनमे चमत्कार और मार्मिकता लाते रहे हैं।[96] कहना न होगा कि प्रस्तुत विवेचन मे डॉ० गया सिंह ने लोकोक्ति के विषय-वैविध्य का प्रतिपादन करते हुए उसे उभयरूपा स्वीकार किया है। उनका यह कथन है कि एक ही मूल की विभिन्न भाषाओ तथा बोलियो मे कुछ सामान्य हेर-फेर से इसका ढांचा एक-सा रहता है, उपयुक्त प्रतीत होता है। इसके साथ उन्होने जो यह कहा है कि लोकोक्ति के द्वारा काव्य भाषा मे तीव्रता, प्रेषणीयता, चमत्कार एव मार्मिकता की सृष्टि होती है, काव्य भाषा मे इसके प्रभाव-सामर्थ्य का प्रतिपादन है। इस सम्बन्ध मे विस्तारपूर्वक चर्चा की जाएगी।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर लोकोक्ति की निम्नांकित विशेषताए निर्धारित की जा सकती हैं—

—सक्षिप्तता, सारगर्भितता एव सप्राणता इन तीनो तत्त्वो का निरूपण श्री आर०सी० ट्रेंच ने और चौथे तत्त्व लोकप्रियता को हेस्टिंग्स ने स्वीकार किया। डॉ०कन्हैयालाल 'सहल' ने सक्षिप्तता, सारगर्भितता एव सप्राणता किसी उत्कृष्ट लोकोक्ति के तो अपरिहार्य गुण स्वीकार किए हैं, किन्तु लोकोक्ति मात्र के अनिवार्य गुण नही माने हैं। डॉ० सहल ने अपने मत की पुष्टि के उपयुक्त उदाहरण भी उद्धृत किए हैं, जिनका खण्डन अनेक विद्वानो ने किया है। सक्षिप्तादि लोकोक्ति के अनिवार्य गुण हैं। यद्यपि कुछ लोकोक्तिया सक्षिप्त न होकर विस्तृत भी होती हैं; किन्तु इस प्रकार की लोकोक्तिया अपवाद स्वरूप ही कही जाएँगी, क्योकि प्राय लोकोक्ति सक्षिप्त होती है। सारगर्भितता एव सप्राणता का अभाव लोकोक्ति को स्वीकार्य नही है। डॉ० लक्ष्मी नारायण शर्मा ने सजीवता को सारगर्भितता के अन्तर्गत माना है, जो उचित प्रतीत नही होता। सारगर्भितता एव सप्राणता लोकोक्ति के दो भिन्न-भिन्न तत्त्व हैं।

लोकप्रियता लोकोक्ति का प्राणतत्त्व है।

—लोकोक्ति मे निहित मानवीय अनुभव एव उनकी सत्यता के विषय मे विद्वानो मे विवाद रहा है। कुछ विद्वानो ने लोकोक्ति के सत्य को चरम सत्य माना है तो कुछ विचारकों—टी०टी० मुगर आदि ने अर्द्धसत्य मात्र स्वीकार किया है। वस्तुत जीवन के अन्त एव बाह्य पक्ष का, इहलोक एव परलोक का, जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त विविध अनुभवो का उद्घाटन लोकोक्ति के माध्यम से होता है। अनुभवो का वैविध्य लोकोक्ति मे प्रतिपादित ज्ञान को विविधता प्रदान करता है।

—कुछ विद्वानो ने लोकोक्ति का आधार ऐतिहासिक या पौराणिक कथाओ एव प्राकृतिक नियमो को माना है। लोकोक्ति का यह आधार अपनी सीमाओ का स्पष्ट सकेत कर देता है। मानवीय अनुभव का क्षेत्र जितना विस्तृत होगा, लोकोक्ति का विषयगत वैविध्य भी उतना ही व्यापक बन जाएगा। प्राकृतिक अनुभव भी मानवीय अनुभव का एक रूप है। इससे इतर भी लोक-शास्त्र आदि द्वारा भी अनुभवो का ग्रहण कर, उन्हें लोकोक्तियो मे समाविष्ट किया गया है। ऐतिहासिक-पौराणिक घटना-कथा, प्राकृतिक अनुभव के अतिरिक्त लोक एव शास्त्र का सारतत्त्व भी लोकोक्ति का आधार निर्मित कर इसे सारगर्भित बनाते हैं।

—प्रयोग की दृष्टि से डॉ० तिवारी ने पुष्टि अथवा विरोध—इन दो दृष्टियो की स्थापना की है, किन्तु उनका यह मन्तव्य सीमापूर्ण है। लोकोक्तियो का उपयोग डॉ० सत्येन्द्र द्वारा विवेचित चार दृष्टियो—पोषण, शिक्षण, आलोचन एव सूचन द्वारा ही प्राय मान्य रहा है। डॉ० रमेश चन्द्र ने अपने शोध प्रबन्ध मे नीति, निर्देश आदि शब्दो का प्रयोग कर नवीनता लाने का प्रयत्न किया है, किन्तु प्रकारान्तर से उपयोग सम्बन्धी ये दृष्टिया डॉ० सत्येन्द्र के द्वारा विवेचित चार दृष्टियो के समानान्तर ही व्याख्यायित हुई हैं। इनके अतिरिक्त डॉ० रमेश चन्द्र ने इनमे हास्य, व्यग्यात्मक, आलकारिकता आदि विशेषताएं स्वीकार की हैं।

—शब्दशक्ति की दृष्टि से लोकोक्तिया वाच्यात्मक, लक्ष्यात्मक एव व्यग्यात्मक तीनो ही प्रकार की होती हैं, किन्तु तुलनात्मक दृष्टि से व्यग्यात्मक लोकोक्तियो की सख्या सर्वाधिक होती है।

—लोकोक्ति के अन्य तत्वो में डॉ० मदनलाल शर्मा ने तीन अन्य तत्त्व माने हैं। ये हैं—सरलता, उपयोगिता एव पूर्ण वाक्य। प० मुरलीधर व डॉ० कृष्णदेव ने भी 'सरलता' पर विशिष्ट बल दिया है।

—'तुक साम्य' लोकोक्ति की एक अपूर्व विशेषता है। गद्यबद्ध और पद्यबद्ध दोनो ही प्रकार की लोकोक्तियो मे लय अथवा लयात्म अनिवार्यत होता है।

—डॉ० सत्येन्द्र के मतानुसार लोकोक्तियां प्राय अन्योक्तियां होती हैं। आलकारिकता लोकोक्ति की अभिन्न विशेषता है।

—लोकोक्ति समग्रत सौन्दर्य की सृष्टिकर्त्री है। लोकोक्ति द्वारा निष्पादित सौन्दर्य का उद्घाटन रस, अलकार, ध्वनि, उक्ति-वैचित्र्य, शब्द-शक्ति, व्यग्य एव बिम्ब-विधान आदि विभिन्न दृष्टियो के द्वारा देखा जा सकता है।

—लोकोक्ति की अन्तिम विशेषता है इसका प्रसगानुकूल प्रयोग। इससे प्रकरण मे प्रभावात्मकता आती है। लोक-व्यवहार के अतिरिक्त साहित्य के क्षेत्र मे लोकोक्ति के प्रयोग के द्वारा काव्य-भाषा मे तीव्रता, प्रेषणीयता, चमत्कार एव मार्मिकता की सृष्टि होती है। डॉ० गयासिंह ने अपने विवेचन मे काव्य भाषा और लोकोक्ति के सम्बन्ध पर विचार किया है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निष्कर्षत लोकोक्ति के स्वरूप को इस प्रकार स्थिर किया जा सकता है—किसी ऐतिहासिक-पौराणिक घटना अथवा कथा, प्राकृतिक नियम, लोक व्यवहार (लोक-न्यायादि) एव शास्त्र-सम्बन्धी मानवीय अनुभव पर आधारित ज्ञान (सत्य) को उद्घाटित करने मे समर्थ प्राय सक्षिप्त, सारगर्भित, सजीव, सरल, उपयोगी तथा लोकप्रिय सतुक (लय-लयांशयुक्त) गद्य या पद्यमय पूर्ण वाक्य अथवा वाक्य-समूह का जब प्रसगानुकूल किसी पुष्टि, शिक्षा, आलोचना अथवा सूचना-निर्देश आदि के लिए प्रयोग होता है, तो उसे लोकोक्ति की सज्ञा से अभिहित किया जाता है। इसके प्रयोग से प्रकरण मे जीवन्तता-प्रभावोत्पादकता तथा काव्य-भाषा मे तीव्रता-प्रेषणीयता आदि की सृष्टि होती है। समग्रत लोकोक्ति एक चमत्कार अथवा सौन्दर्य की सृष्टि-कर्त्री है। साहित्य मे लोकोक्ति द्वारा निष्पन्न इस सौन्दर्य का दर्शन रस, अलकार, ध्वनि, उक्ति-वैचित्र्य, शब्दशक्ति एव व्यग्य आदि विभिन्न दृष्टियो के परिप्रेक्ष्य मे किया जा सकता है। इनके सभी काव्यागो के आलोक मे लोकोक्ति मे निहित सौन्दर्य का अन्वेषण इन पक्तियो के लेखक की शोध कृति का मूल उद्देश्य है।

लोकोक्ति के समानान्तर कुछ अन्य शब्द भी प्रचलित हैं, जिनकी लोकोक्ति के साथ तुलना करते हुए भेदाभेद स्थापित करना आवश्यक है। ये हैं—लौकिक न्याय, कहावत, प्रहेलिका और सूक्ति अथवा प्राज्ञोक्ति आदि।

लोकोक्ति और लौकिक न्याय—सन् 1877 मे डॉ० बीलर की काश्मीर-रिपोर्ट मे न्याय शब्द का प्रयोग 'परिचित उदाहरणो से निकाले हुए अनुमान' के अर्थ मे किया गया था। कर्नल जैकब ने लौकिक न्याय के पर्याय रूप मे Maxim शब्द ग्रहण किया था, किन्तु इस पर्याय से वे स्वय सन्तुष्ट नही थे। उन्होने तो केवल बडे-बडे विद्वानो द्वारा न्याय के अर्थ मे गृहीत Maxim शब्द को देखकर ही अपनाया था, अन्यथा उनकी मान्यता थी कि अग्रेजी भाषा मे न्याय के अन्तर्गत दृष्टान्त, नियम और अधिकरण तीनो का सन्निवेश किया गया है। अग्रेजी का Maxim शब्द इतना व्यापक नही है कि वह उक्त तीनो प्रकार के अर्थों का वाचक बन सके। इसलिए जैकब के मतानुसार तो न्याय

शब्द का अग्रेजी अनुवाद न करके अग्रेजी भाषा मे भी इसे ज्यों का-त्यो ग्रहण कर लेना चाहिए।[97]

'लोकोक्ति' एव 'लौकिक न्याय' मे प्राय विद्वानो ने अभिन्नता स्वीकार की है। प० रामनरेश त्रिपाठी के अनुसार तो 'सस्कृत में लौकिक न्याय के अन्तर्गत बहुसख्यक सूत्र उस समय की या उससे पहले की लोक विश्रुत कहावतें ही हैं। उसमें जो युक्ति-मूलक दृष्टान्त हैं, वे किसी एक समय क नही हैं, भिन्न भिन्न परिस्थितियो में पडकर बुद्धिमानो को जो सच्चे अनुभव हुए, उन्ही को उन्होने सूत्रबद्ध करके जनता को सौंप दिया। जनता ने उनको उपयोगी समझकर अपना लिया। इस प्रकार मुक्तभोगियो के कितने ही सच्चे हृदयोद्गार लोकोक्तियो के रूप मे प्रचलित हो गए।[97] यहा त्रिपाठी जी ने यही विशेष बात कही है कि सस्कृत साहित्य मे लौकिक न्याय लोकोक्तियो से भिन्न नही है तथा लौकिक न्याय के अन्तर्गत बहुसख्यक सूत्र अथवा युक्ति मूलक दृष्टान्त से लोकोक्ति भिन्न नही है। लोक-विश्रुत कहावतों को जहा लौकिक न्याय क रूप मे स्थान मिला, वहा अनेक सूत्रबद्ध युक्ति-मूलक दृष्टान्त लोकोक्ति के रूप म लोक प्रचलित हो गए।

इस सम्बन्ध मे डॉ० कन्हैयालाल सहल ने जो मतव्य व्यक्त किया है, वह इस प्रकार है—

(1) अनेक न्याय ऐसे हैं जो एक पदात्मक है। मत्स्य न्याय, टिट्टिभन्याय आदि उदाहरण स्वरूप रखे जा सकते हैं। विश्व मे शायद ही कोई ऐसी लोकोक्ति हो जो केवल एक पद मे समाप्त हो जाती हो। छोटी-से-छोटी लोकोक्ति क लिए भी कम से-कम दो पद आवश्यक है। ट्रेंच के मतानुसार *voll, toll जर्मन-लोकोक्ति दुनिया की सबसे छोटी कहावत है।*

(2) प्राय न्याय द्विशब्दात्मक हैं, जिनका सम्पूर्ण वाक्य की भाति प्रयोग नही होता, यथा—अजाकृपाणीन्याय, अन्धगज, कूपमण्डूक न्यायादि। इनके मूल मे कोई न-कोई कथा मिलती है, जिसको जाने बिना स्पष्टीकरण नही हो पाता। अनेक लोकोक्तिया भी ऐसी हैं, जिनके पीछे कोई-न-कोई कथा पाई जाती है, किन्तु लोकोक्ति सम्पूर्ण वाक्य की तरह प्रयुक्त हाती है, दो दो शब्दो मे पद्यांश की तरह नही। कहावती रूप मे क्रिया का कभी-कभी अभाव होने पर भी क्रिया सदा गम्य रहती है।

(3) कुछ न्यायो को लोक प्रसिद्ध उपमाओ का नाम दिया जा सकता है, यथा चक्रभ्रमण न्याय, अरण्यरोदन न्यायादि। लोकोक्तियो मे भी यद्यपि ऐसे उदाहरण प्राप्त हैं, किन्तु लौकिक न्यायो मे इस प्रकार की उपमाओ का प्राचुर्य दृष्टिगत होता है।

(4) कतिपय न्याय ऐसे भी हैं, जिनमे लोकोक्ति के लक्षण प्राप्त होते है, जैसे

(क) भक्षितेऽपि लशुने न शान्तो व्याधि लहसन खाकर भी रोग शान्त न हुआ। जैकब इस प्रकार के न्याय के लिए 'प्रोवर्ब' शब्द का ही प्रयोग करते हैं।

(ख) वरमद्य कपोतः श्वो मयूरात्—कल के मयूर से आज का कपोत अच्छा।

(ग) सर्वे पद हस्तिपदे निमग्नम्—हाथी के पैर मे सब पैर आ जाते हैं।

(5) ऐसे न्याय जो कहावत के रूप मे उपलब्ध हैं, जैसे 'गौ महिषी न्याय' अथवा राजस्थानी लोकोक्ति—'गाय को भैस के लागे और भैस की गाय के लागे ?' अर्थात् गाय और भैस का परस्पर क्या सम्बन्ध ?

(6) जैकब द्वारा सगृहीत और सम्पादित लौकिक न्यायांजलि मे कहीं-कहीं न्याय के स्थान मे निदर्शन और नियम शब्द का प्रयोग हुआ है। यथा (क) 'तम प्रकाश निदर्शनम्'। अर्थात् अन्धकार और प्रकाश की युगपत् स्थिति का दृष्टान्त। (ख) 'तैल कलुषित शालिबीजादं कुरानुदय नियम.'। अर्थात् तेल से कलुषित बीज के अंकुरित न होने का नियम।

(7) प्रश्नोत्तर के रूप मे न्याय, यथा—

प्रश्न : जागर्ति लोको ज्वलति प्रदीप. सखी जनः पश्यति कौतुक मे।
क्षणैक मात्रं कुरु कान्तधैर्यं बुभुक्षितः किं द्विकरेण भुक्ते॥
उत्तर : जागर्ति लोको ज्वलतु प्रदीप. सखी जनः पश्यति कौतुक मे।
क्षणैक मात्र न करोमि धैर्यं बुभुक्षितं न प्रतिभाति किंचित्॥

(8) आभाणक न्याय को न्याय का एक भेद माना गया है। 'वराटकान्वेषण प्रवृत्तश्चिंतामणि लब्धवान्' इसे आभाणक न्याय स्वीकार किया गया है।

(9) कुछ कवियो की उक्ति को न्यायान्तर्गत स्वीकार किया गया। यथा— (क) छिद्रेष्वनर्था बहुली भवन्ति (विष्णुशर्मा) अर्थात् विघ्न पर विघ्न आया करते हैं। (ख) सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृता. (गीता) अर्थात् जैसे अग्नि धूम से आवृत होती है, उसी प्रकार सब समारम्भ दोष से युक्त होते हैं।[99]

डॉ० सहल का लौकिक न्याय एव लोकोक्ति विषयक यह प्रतिपादन यद्यपि उनकी सूक्ष्म विचारशीलता का परिचायक है, तथापि उपर्युक्त वर्गीकरण मे कुछ संशोधन की अपेक्षा है। उदाहरण के लिए चतुर्थ वर्ग को उन्होने न्याय का एक ऐसा रूप माना है, जिसमें लोकोक्ति के लक्षण प्राप्त होते हैं। मेरे विनम्र मत मे वस्तु स्थिति सर्वथा प्रतिकूल है, क्योंकि इस वर्ग मे निर्दिष्ट उदाहरण लोकोक्तियों के ही उदाहरण हैं। इनका प्रयोग भी सस्कृत मे लोकोक्तियो के ही रूप मे हुआ है। हां, न्याय का लक्षण यदि इस प्रकार की लोकोक्ति मे स्वीकार किया जाए तो आपत्ति न होगी, किन्तु इन लोकोक्तियो को न्याय स्वीकार करना युक्तियुक्त प्रतीत नही होता। इसी प्रकार जहां पर उन्होंने पचम वर्ग के न्याय को कहावत के रूप मे माना है और उदाहरण 'गोमहिषी न्याय' को उद्धृत किया है, उससे सम्बन्ध मे मेरा विचार है कि यह उदाहरण लोकोक्ति का उदाहरण न होकर न्याय का उदाहरण ही है। इस प्रकार के ऐसे अनेक न्याय हैं जो आज लोकोक्तियो के रूप में प्रचलित हो गए हैं, अन्वेषण करने से प्रायः सभी वर्गों के लौकिक न्याय के रूप लोकोक्तियों

मे प्राप्त हो सकते हैं। इसका मात्र एक ही आधार है, वह है लोक-प्रचलित। डॉ॰ महल के अनुसार न्याय के अन्तर्गत लोक-प्रचलित पदांश, प्रसिद्ध उपमाएँ, विश्रुत दृष्टान्त, सूक्तियां तथा आभाणक अथवा लोकोक्तियां—सभी को स्थान मिल गया है,[100] किन्तु यही बात लोकोक्ति के विषय मे भी कही जा सकती है। लोक-न्याय व उससे सम्बद्ध प्रकारों को लोकोक्ति अपने गर्भ मे समाहित रखती है, किन्तु लोकप्रियता के अभाव मे इन्हें मात्र सूत्र की संज्ञा देना समीचीन प्रतीत होता है। वे स्वय लिखते हैं कि बहुत से न्याय ऐसे हैं जिन्हें पारिभाषिक दृष्टि से लोकोक्ति तो नही कहा जा सकता किन्तु वे सूत्र-शैली मे ग्रथित ऐसे पद-समुच्चय हैं जो अपने मे गम्भीर अर्थ छिपाए हुए हैं।[101]

वस्तुत 'लोकोक्ति एव लौकिक न्याय' के पार्थक्य का मुख्य कारण यह भी है कि 'लौकिक न्याय' जहा शास्त्र का विषय होने के कारण तार्किको से सम्बद्ध है, वहा 'लोकोक्ति' का प्रयोग सर्वसाधारण एव शिष्ट सभी प्रकार के व्यक्तियों द्वारा होता है। 'लौकिक न्याय' एव लोकोक्ति के परस्पर सम्बन्ध के विषय मे उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि 'लौकिक न्याय' के अन्तर्गत 'लोकोक्ति' तथा 'लोकोक्ति' के अन्तर्गत 'लौकिक न्याय' का भी समावेश है, किन्तु प्रत्येक 'लौकिक न्याय' मे 'लोकोक्ति' और इसी प्रकार प्रत्येक 'लोकोक्ति' मे 'लौकिक न्याय' का समावेश नहीं हो सकता। गूढ, शास्त्रीय अथवा दार्शनिक लौकिक न्याय मात्र शास्त्रबद्ध ही रहते है, जबकि इनसे पृथक् कुछ लौकिक न्याय अपने विशिष्ट गुणो के परिणामस्वरूप लोक-प्रचलित होकर कदाचित् किंचित् परिवर्तन के साथ लोकोक्ति का पर्याय बन जाते हैं।

लोकोक्ति और कहावत—कुछ विद्वानो द्वारा इनमे परस्पर भेदाभेद स्थापित करने का प्रयत्न हुआ है। इस समस्या का श्रीगणेश तब हुआ जब कहावत कोश के सपादक डॉ॰ भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव' एव श्री विक्रमादित्य मिश्र ने कहावत को श्रेष्ठ सिद्ध करते हुए लोकोक्ति को सामान्य कोटि का बताया। यही नही उन्होने विभिन्न विद्वानो के मतो द्वारा साग्रह अपने मत की स्थापना की। उनका मन्तव्य इस प्रकार है—किसी भी सामान्य उक्ति को लोकोक्ति कहा जा सकता है, लेकिन कहावत लोक की सामान्य उक्ति न होकर एक विशेष प्रकार की सर्वग्राह्य उक्ति होती है। इसके विपरीत लोकोक्ति सर्वग्राह्य होते हुए भी एक सर्वमान्य उक्ति होती है। लोकोक्ति के अन्तर्गत बच्चो के खेल-सम्बन्धी उक्तिया, मनोरजन विषयक उक्तिया, बुझौवल (पहेलियां), निरर्थक अथवा निरभिप्राय सार्थक अथवा साभिप्राय उक्ति होने के कारण लोकोक्ति का ही एक प्रकार है, जिसका एक विशेष प्रयोजन होता है। उपदेश, शिक्षा, ज्ञान, सूचना, आलोचना, मनोविज्ञान, कृषि, व्यवसाय, विधि निषेध, रीति-नीति, हास्य व्यग्य आदि कहावतो के विशेष अभिप्राय होते हैं।...निष्कर्ष यह है कि कहावतें सार्थक तथा साभिप्राय होती हैं और उनमे सीधे चोट करने की ऐसी क्षमता है, जो शास्त्रीय उपदेश-वाक्यो मे भी उपालम्भ सम्भव नही। किन्तु लोकोक्तियाँ सार्थक अथवा निरर्थक दोनो ही प्रकार की होती हैं।[102] उनका यह मन्तव्य कहावत की उच्चता व श्रेष्ठता बताते हुए लोकोक्ति को निरर्थक एव महत्त्वहीन सिद्ध करता है। किन्तु यह भ्रामक है। उन्होने लोकोक्ति एव कहावत के विषय मे की

गई चर्चा को आधार बनाते हुए अपने मत को पुष्ट कर अर्थ का अनर्थ कर दिया है। उदाहरण देकर आगे वे लिखते हैं—तात्त्विक दृष्टि से कहावत और लोकोक्ति मे अन्तर है। कहावत व्यक्ति की उक्ति होती है, किन्तु लोकोक्ति व्यक्ति की उक्ति होकर व्यक्तित्व विहीन होती है।[103] आगे वे लिखते हैं—कहावतें लोकोक्तियो का एक अंग है। ये निश्चय ही विशेष अभिप्राय से परिचालित होती है।[104] उपर्युक्त विवेचन मे एक मे कहावत को लोकोक्ति से बिलकुल भिन्न तथा दूसरे मे लोकोक्ति का ही एक प्रकार माना गया है। यह ठीक है कि कहावत लोकोक्ति का ही एक प्रकार है, किन्तु विशेष प्रकार की उक्ति होने के कारण इसका स्वतन्त्र अस्तित्व और विशेष अभिप्राय होता है। व्यक्ति की उक्तिया तो कहावत और लोकोक्तिया, दोनो ही हैं, पर एक का अभिप्राय विशेष और दूसरे का सामान्य होता है। एक का सार्थक तथा साभिप्राय होना आवश्यक है, पर दूसरे के लिए ऐसी कोई अनिवार्यता नही।...कहावत भी लोकोक्ति ही है, पर वह कहने का एक विशिष्ट ढग है, जिसमे बुद्धि-वैभव के साथ-साथ सूक्ति की-सी मार्मिकता और गहरी अन्तर्दृष्टि तो होती है, उसमे सर्वाधिक प्रधान होता है 'लोकानुभव' जबकि लोकोक्ति का क्षेत्र इससे भिन्न और विस्तृत होता है।[105]

श्री भुवनेश्वर नाथ मिश्र 'माधव' के उपर्युक्त मन्तव्य से लोकोक्ति एव कहावत के भेदाभेद से सम्बद्ध सन्देह तो उत्पन्न हो जाता है, किन्तु तार्किकता के अभाव के कारण इनमे भेदाभेद स्पष्ट नही हो पाता। डॉ० सत्येन्द्र के विचार इस विषय मे द्रष्टव्य हैं। उनके विचारानुसार अन्य प्रकार के लोक-साहित्य से भी कहावतो का अधिक भाण्डार मिलता है। परसोकले, पटके, अनमिल्ला खुसि, गहगड्ड आदि रूप और अभिप्राय के कारण कहावत के भेद ही हैं। वे लोकोक्ति के बड़े नाम से भी पुकारे जा सकते हैं। लोकोक्तियो मे मानवीय ज्ञान का सार सन्निहित रहता है। इसमे नीति तो होती ही है, ग्रामीण दर्शन भी होता है। लोकोक्तिया सूत्रो की शैली पर हैं। सूत्र-शैली का विकास उपनिषदो के बाद हुआ और चाणक्य आदि के समय मे 'सूत्र-प्रणाली' का अधिकाधिक विकास हुआ। इसलिए यह भी कहा जा सकता है कि सभवतः सूत्र मे ही कहावतो और लोकोक्तियो का विशेष उत्कर्ष हुआ। यह वह उक्ति है जो लोक की उक्ति के साथ ही साथ साहित्य का अग और साहित्य मे भी सम्मान की भागी बनी।[106] प्रस्तुत विवेचन से यह स्पष्ट है कि 'लोकोक्ति' 'कहावत' का समानार्थक शब्द है। लोकोक्ति का विकास उपनिषद् युग के अनन्तर सूत्र-काल मे सूत्र-शैली मे हुआ। अर्थात् जब अनुभूत मानवीय ज्ञान को अति-संक्षिप्त रूप मे प्रस्तुत किया गया तो ये सूत्र जो सुविज्ञो द्वारा निर्मित थे, प्रचार-प्रसार पाकर लोक-विख्यात हो गए और लोक-वाणी का शृ गार बनकर लोकोक्ति के नाम से अभिहित हुए।

'कहावत' शब्द की व्युत्पत्ति अति विवादास्पद है, किन्तु इतना निश्चित् है कि शाब्दिक दृष्टि से इसका प्रचलन 'लोकोक्ति' शब्द की अपेक्षा बाद मे हुआ। 'कहावत' शब्द की व्युत्पत्ति के विषय मे डॉ० सहल ने द्वादश मतो की विस्तृत स्थापना की है, जिस का सारांश इस प्रकार है—

प० रामदहिन मिश्र ने 'कहावत' शब्द की व्युत्पत्ति 'कथावत' शब्द से मानी है। प्राकृत व्याकरण के नियमानुसार 'थ' को 'ह' हो जाता है। प्लाट भी इसी बात के समर्थक हैं। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार प्राकृत धातु 'कहाव' से भाव वाचक सज्ञा बनाने के लिए 'त्त' प्रत्यय जोडकर 'कहावत्त' 'कहावत' रूप बन सकता है। प्राकृत मे 'कहावत्ता' और सस्कृत मे 'कथावार्त्ता' शब्द के साथ भी इसका निकट का सम्बन्ध है। टर्नर के नेपाली शब्द-कोश मे भी इस मत की पुष्टि की गई है। कहावत से मिलते-जुलते अनेक शब्द हैं—'कहाउत्' 'कहावत्' (नेपाली), 'कहौत' (पजाबी), 'कहात' (सिन्धी) आदि। मूल रूप 'कथ्' है, जिससे उत्पन्न 'कथापित', 'कथोद्घात' या 'कथावृत्त' से इसकी उत्पत्ति होना सम्भव है। अपभ्र श मे 'आभाणव', 'अहान' आदि शब्दो का प्रयोग तो मिलता है, किन्तु 'कहावत' के किसी पूर्व रूप का नही। कुछ विद्वानो के मत मे 'कहावत' शब्द की व्युत्पत्ति के विषय मे उर्दू-फारसी शब्द-रचना—'मुसौवत' जैसे शब्द सामने रखकर विचार करना चाहिए। स्व० आचार्य केशवप्रसाद मिश्र का अनुमान है कि 'कह्' धातु के आगे अरबी 'आवत' प्रत्यय लगाकर 'कहावत' शब्द बन सकता है। इन सबसे भिन्न कुछ विद्वान् 'कथावस्तु' को इसका मूल रूप स्वीकार करते हैं।[107] अभिप्राय यह है कि 'कहावत' की व्युत्पत्ति का कार्य विवाद की अधिकता के परिणामस्वरूप जटिल बन गया है। विभिन्न मतो के विशेषण करने से इसकी व्युत्पत्ति-विषयक दो सम्भावनाए प्रकट होती हैं—

(1) कहावत शब्द की व्युत्पत्ति यदि किसी सस्कृत शब्द से हुई है तो उसके लिए सम्भावना 'कथावार्त्ता' शब्द से है, जिसका प्राकृत रूप 'कहावत्ता' ध्वनि और अर्थ दोनो दृष्टियो से 'कहावत' शब्द के सन्निकट है। दूसरी बात यह है कि 'कथावार्त्ता' शब्द 'कथावत्' आदि शब्द की तरह कल्पित शब्द न होकर प्रयोग मे भी आता है।

(2) यदि 'कहावत' शब्द सादृश्य के आधार पर प्रचलित हुआ है तो 'लिखावट' 'सजावट' आदि के सादृश्य पर कहावट (कहावत) शब्द का बन सकना असम्भव नही है। राजस्थानी भाषा मे कथन के अर्थ मे 'कुहावट', 'कुवावट' आदि शब्द बोलचाल मे अब भी प्रयुक्त होते हैं।[108] कन्नौजी मे भी कहावत के लिए 'कहनोति', 'कहाउति' और 'कहाउट' शब्द मिलते हैं। ब्रज मे भी इससे मिलते जुलते कई शब्द हैं, यथा सूर ने एक स्थान पर 'कहनावति' शब्द का प्रयोग किया है—'साची भई कहनावति उनकी ऊँची दुकान अरु मीठो पकवान'। इस तथ्य को दृष्टि मे रखकर सादृश्य के आधार पर इस शब्द की व्युत्पत्ति की बात कष्ट कल्पना नही प्रतीत होती।[109]

शाब्दिक दृष्टि से भी 'लोकोक्ति' शुद्ध तत्सम शब्द होने के कारण इसकी परम्परागत प्रचलन की मान्यता पर सहज ही विश्वास किया जा सकता है, जबकि 'कहावत' शब्द तद्भव शब्द है। अत यह निश्चित है कि इसका प्रचलन 'लोकोक्ति' शब्द की अपेक्षा बाद मे ही हुआ। निष्कर्षत कहा जा सकता है कि 'कहावत' शब्द का जन्म 'लोकोक्ति' शब्द के पश्चात कालान्तर मे हुआ और इसे हम यदि जन्म होने के स्थान पर रूपान्तर होना स्वीकार करें, तो यह कथन उपयुक्त प्रतीत होगा।

लोकोक्ति और पहेली—लोकोक्ति और पहेली का मूल एक ही है—लोक-

मानस । पहेली भी लोक की उक्ति है। लोक-मानस इसके द्वारा किसी विशिष्ट अर्थ की अभिव्यक्ति करता है और इसको बुद्धि-परीक्षा का साधन बनाता है, फिर भी लोकोक्ति और पहेली मे पर्याप्त भिन्नता है।

पहेली का शुद्ध रूप 'प्रहेलिका' है। सस्कृत-साहित्य मे इसके लिए एक और नाम ब्रह्मोदय मिलता है। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार अश्वमेध यज्ञ मे यह अनुष्ठान का एक भाग था। अश्व की वास्तविक बलि के पूर्व 'होता' और 'ब्राह्मण' ब्रह्मोदय पूछते थे। इसे पूछने का अधिकार केवल दो व्यक्तियो को ही था।[110] किन्तु कुछ कर्मकाण्डी विद्वानो ने इस यज्ञ मे बलि को स्वीकार नही किया है। जहा तक ब्रह्मोदय अथवा प्रहेलिका का प्रश्न है, वैदिक साहित्य मे इसका प्रचुर प्रयोग किया गया है। ऋग्वेद को उसकी रहस्यात्मक ऋचाओ के कारण 'पहेलियो का वेद' कह सकते हैं।[111] उपनिषदो मे इस प्रकार के कितने ही रहस्यात्मक प्रश्न मिलते हैं। नचिकेता ने यम से वह रहस्यपूर्ण तत्व बताने का आग्रह किया था जिसे प्राप्त कर लेने से मनुष्य अमर हो जाता है। गीता मे श्रीकृष्ण द्वारा सासारिक सृष्टि का वर्णन अत्यन्त गूढात्मक शैली पर है। महाभारत मे उपलब्ध यक्ष-युधिष्ठिर सवाद प्राचीन काल की पहेलियो का एक सुन्दर उदाहरण है जब युधिष्ठिर ने यक्ष द्वारा पूछे गए चार प्रश्नो का उत्तर क्रम से दिया था। सस्कृत साहित्य मे 'अन्तर्लापिका' और बहिर्लापिका' नामक पहेलिया मिलती हैं। सुभाषित सग्रहो मे इनकी अगणित सख्या है, जहा कोई प्रश्न करते हुए उत्तर अलग से दिए गए हैं या प्रश्नोत्तर साथ-साथ हैं। पद-भग करके प्रश्न का उत्तर समझ लिया जाता है या श्लोक के कुछ चरणो मे प्रश्न करके एक चरण मे सबका उत्तर दे दिया जाता है।[112] लोकोक्ति की भाति 'प्रहेलिका' भी सुदीर्घ काल से लोक प्रचलित रही है। हिन्दी-साहित्य कोश के अनुसार—'लोकोक्ति' केवल 'कहावत' ही नही है, प्रत्येक प्रकार की उक्ति लोकोक्ति है। इस विस्तृत अर्थ को दृष्टि मे रखकर लोकोक्ति के दो प्रकार माने जा सकते हैं—एक पहेली, दूसरी कहावतें। पहेली भी लोकोक्ति है। लोक-मानस इसके द्वारा अर्थ गौरव की रक्षा करता है और मनोरजन प्राप्त करता है। यह बुद्धि-परीक्षा का भी साधन है। यद्यपि पहेलिया स्वभाव से कहावतो की प्रवृत्ति से विपरीत प्रणाली पर रखी जाती हैं, क्योकि पहेलियो मे एक वस्तु के लिए बहुत से शब्द प्रयोग मे आते हैं, भाव से इनका सम्बन्ध नही होता, प्रकट को गोप्य करने की चेष्टा इनमे रहती है, ये बुद्धि कौशल पर निर्भर करती है, जबकि कहावत मे सूत्र प्रणाली होती है, लघु प्रयत्न मे विस्तृत अर्थ व्यक्त करने की प्रवृत्ति रहती है, फिर भी पहेलिया उतनी ही उक्तिया हैं जितनी कहावतें।[113] इससे स्पष्ट है कि पहेलिया लोक म लोकोक्तियो के समान ही विख्यात हैं, इस समानता को अस्वीकार नही किया जा सकता, तथापि इनमें वैषम्य भी प्राप्त होता है जो इस प्रकार है—

(1) पहेलिया बुद्धि-परीक्षा का साधन हैं और इनका साध्य है बुद्धि-चमत्कार। ये बुद्धि-कौशल पर निर्भर करती हैं जबकि इसके विपरीत लोकोक्ति का सम्बन्ध अनुभूत मानवीय ज्ञान से है। लोकोक्तियो म निहित मानवीय अनुभव की प्रवणता उन्हें प्रहेलिका

की कौतूहल-प्रदर्शन की प्रवृत्ति से पृथक् कर लघु प्रयत्न से अर्थ के विस्तृत आयाम प्रदान करती है।

(2) पहेली में प्रकट को गोप्य रखने की चेष्टा रहती है जबकि लोकोक्ति के श्रवण मात्र से अर्थ व्याप्त हो जाता है। अर्थ की दृष्टि से पहेलिया अपनी स्वाभाविक गुण धर्मिता के कारण क्लिष्ट होती हैं। अर्थात् इसके अर्थ बोध के लिए मस्तिष्क को भीषण श्रम करना पड़ता है, वहा लोकोक्ति एक बार पढ़कर अथवा श्रवण कर हृदयगम हो जाती है। लोकप्रियता की दृष्टि से परस्पर साम्य प्रतीत होने पर अन्य दृष्टियो से इनका परस्पर वैषम्य स्पष्ट हो जाता है। निष्कर्षत 'लोकोक्ति' 'पहेली' से भिन्न विधा है।

लोकोक्ति एव अलकार—लोकोक्ति मे आलकारिकता के स्पष्ट दर्शन होते हैं, किन्तु लोकोक्ति मात्र को लोकोक्ति नामक विशिष्ट अलकार के अन्तर्गत समाहित करके कुछ अलकारशास्त्री विद्वानो ने इसके साथ अन्याय किया है। 'भारतीय साहित्य कोश' के अन्तर्गत इस विषय मे लिखा गया है—लोकोक्ति एक गौण अलकार है। जब प्रसग-प्राप्त किसी लोकोक्ति (मुहावरा) का प्रयोग किया जाए तो लोकोक्ति अलकार होगा। 'लोकोक्ति' का अर्थ लोक-कथन या कहावत है। यदि किसी प्रसग मे लोक प्रसिद्ध कहावत का प्रयोग किया जाए और उससे कथन मे चमत्कार का आधान हो तो वहा यह अलकार होगा।[114]

'लोकोक्ति' को अलकार का रूप देने का श्रेय अप्पयदीक्षित को है। दीक्षित के इस प्रयत्न का स्रोत भोजकृत लोकोक्ति ही है। इन्होंने भोज के उदाहरण मे प्रतिपादित 'लोचनेमीलयित्वा' को भी यथावत् ग्रहण किया है। उदाहरण है—'सहस्व कतिचिन्मा-सान् 'मीलयित्वा विलोचने'। यहा नायक के द्वारा विरहिणी के सदेश का वर्णन है। आखें मूदकर (मीचकर) कुछ मास और व्यतीत कर लो। दीक्षित के अनुसार जब काव्य मे लोक प्रवाद या लोकोक्ति का अनुसरण किया जाय तो 'लोकोक्ति अलकार' होगा।[115] यहा उपर्युक्त लोकोक्ति का उदाहरण वस्तुत लोकोक्ति का उदाहरण न होकर मुहावरे का उदाहरण दिया गया है। 'लोचने मीलयित्वा' अर्थात् ध्यान हटाकर इसका लक्ष्यार्थ है। ध्यान की विस्मृति का द्योतक यह मुहावरा प्रथम भोज द्वारा और तदनन्तर अप्पय-दीक्षित द्वारा लोकोक्ति के रूप मे प्रयुक्त होने के साथ-साथ 'लोकोक्ति अलकार' के लक्षण का भी अग बन गया, जो उचित प्रतीत नही होता। इधर भोज ने लोकोक्ति को एक शब्दालकार के अन्तर्गत माना है। छाया नामक शब्दालकार के षट् भेदो म एक भेद "लोकोक्तिछाया किया है। काव्य मे कवि के द्वारा लोकोक्ति के प्रयोग होने पर प्रस्तुत शब्दालकार का भेद होता है—

अन्योक्ति नामनुकृतिश्छायासापीहषड् विधा।
लाकच्छेकार्भकोन्यस्त पोटामतोक्ति भेदत ॥[116]

अग्निपुराणकार के मतानुसार छाया अन्य की उक्ति का अनुकरण है। यह चतुर्विधा है—लोकोक्ति, छेकोक्ति, अर्भकोक्ति एव मत्तोक्ति—तत्रान्योक्तेरनुकृतिरुच्छाया साऽपि

चतुर्विधा ।[117]

केशव मिश्र ने आभाणक को लोकोक्ति की संज्ञा स्वीकार कर इसका पूर्ववत् 'लोकोक्तिच्छाया' के रूप मे वर्णन किया है—

आभाणको हि लोकोक्तिः । यानुधावति लोकोक्तिच्छायामिच्छद्न्ति ता बुधा ।।[118]

रीतिकालीन आचार्यों मे जसवन्तसिंह, मतिराम तथा पद्माकर आदि ने अप्पय-दीक्षित द्वारा निर्धारित लोकोक्ति अलकार के लक्षण को स्व-स्व ग्रथो मे अनूदित किया है—

(क) लोक उक्ति कछु वचन जो लीन्हे लोक प्रवाद (भाषा भूषण, 184)।

(ख) जह कहनावति अनुकरण, लोक उक्ति मतिराम (ललित ललाम, 366)।

(ग) लोकोक्ति जह लोक की कहनावति ठहराउ (पद्माभरण, 257)।

इनसे पृथक् उद्योतकार नागेश ने चमत्कार के अभाव मे इसे अलकारत्व भी प्रदान नही किया ।[119] प्रस्तुत विवेचन लोकोक्ति की आलकारिकता को एक विशिष्ट प्रकार मे परिबद्ध कर देता है, जो लोकोक्ति के साथ न्याय नही करता । लोकोक्तियो मे शब्दालकारो एव अर्थालकारो का सुन्दर सयोजन हुआ है । कही भी ये अलकार कृत्रिम रूप मे प्रयुक्त नही हुए हैं, प्रत्युत इनका प्रयोग स्वाभाविक रूप मे ही हुआ है । अत. लोकोक्ति मात्र को एक विशिष्ट अलकार के अन्तर्गत सीमित करना उपयुक्त प्रतीत नही होता। शोध-प्रबन्ध के स्वतन्त्र परिच्छेद मे लोकोक्तियो मे निहित अलकारगत रमणीयता का विस्तृत विवेचन किया गया है ।

लोकोक्ति एव प्रज्ञोक्ति अथवा सूक्ति—प्रज्ञोक्ति के अन्तर्गत प्रज्ञासूत्र (Aphorism), व्यवहार-सूत्र (Maxim), मर्मोक्ति (Epigram) आदि आती हैं । प्रज्ञा-सूत्र के लिए प्रयुक्त अग्रेजी शब्द Aphorismग्रीक के Aphorismos से निकला है, जिसका अर्थ है परिभाषा देना । Apo का अर्थ है 'से' और Horsos का अर्थ है 'सीमा' । 'Aphorism' का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ हुआ 'किसी विचार-बिन्दु को सीमाबद्ध करके उसका लक्षण निर्धारित करना अर्थात् उसे निश्चयात्मक रूप देना ।' प्रज्ञा-सूत्र एक प्रकार की ऐसी सक्षिप्त और सारगर्भित उक्ति है जिसमे किसी सामान्य सत्य की अभि-व्यक्ति हुई है । Maxim (व्यवहार-सूत्र) लेटिन शब्द Maxima से निकला है जिसका अर्थ है सबसे बडा । आग्ल भाषा के शब्द-कोष मे 'सर्वाधिक गुरुतापूर्ण उक्ति को' इसकी सज्ञा दी गई है । व्यवहार-सूत्र प्रज्ञा-सूत्र की भाति जीवन के सत्य को मुखरित करता है, किन्तु प्रज्ञा सूत्र जहां विचार को लेकर प्रवृत्त होता है वहा व्यहार-सूत्र का सम्बन्ध आचार-व्यवहार से है । 'मर्मोक्ति' के विषय मे कहा गया है कि 'मर्मोक्ति' ऐसी निशान-दार उक्ति को कहते हैं जो अपने पीछे एक प्रकार की घटक छोड जाए । सस्कृत-साहित्य मे 'सूत्र, सूक्ति, व्याजोक्ति, वक्रोक्ति, नर्मोक्ति, मर्मोक्ति, छेकोक्ति, मुक्तक और सुभा-षित आदि अनेक शब्दों का प्रयोग हुआ है, किन्तु सुभाषित एक अत्यन्त व्यापक शब्द है जिसमे प्रज्ञा-सूत्र, व्यवहार-सूत्र तथा मर्मोक्ति आदि सभी का समावेश किया जा सकता

है।[120] सुभाषित मे इन सबका समाहार हो जाता है। इस 'सुभाषित' को 'प्राज्ञोक्ति' के पर्याय के रूप मे स्वीकार किया जा सकता है।

लोकोक्ति एव प्राज्ञोक्ति के परस्पर भेदाभेद का निरूपण अनेक विद्वानो द्वारा किया गया है। किसी भी विद्वान् ने इनकी अभिन्नता पूर्णरूपेण स्वीकार नही की है। लोकोक्ति एव प्राज्ञोक्ति के पार्थक्य का उद्घाटन विद्वानो द्वारा निम्न प्रकार से किया गया है—

(1) प्राज्ञोक्ति मे ज्ञानी के ज्ञान का जो निष्कर्ष हमें मिलता है, वह सुचिन्तित होता है और प्राय उपदेशमूलक नीति-वाक्य के रूप मे देखा जाता है किन्तु प्रवाद या लोकोक्ति पाण्डित्य, चिन्तन तथा उपदेशात्मक को लेकर अग्रसर नही होती। लोकोक्ति तो स्वत प्रसूत होती है और सरस तथा सक्षिप्त रूप मे अभिव्यक्त होती है। किन्तु प्राज्ञोक्ति ज्ञान और चिन्तन के परिपक्व फल के रूप मे देखी जाती है। नीति-शिक्षा, तत्व ज्ञान और उच्चादर्श लोकोक्तियो के प्रेरक हेतु नही है।[121]

(2) प्राज्ञोक्ति नैतिक जगत् का सत्य होते हुए भी व्यावहारिक जगत् का तथ्य नही होती और लोकोक्ति व्यावहारिक जगत् का तथ्य होते हुए भी नैतिक जगत् का सत्य होती है।[122]

(3) व्यवहार सूत्र या सूक्तिया इकट्ठे हुए सिक्के है 'जबकि लोकोक्तियो को प्रचलित सिक्को के नाम से अभिहित किया जाता है। व्यवहार-सूत्र यदि प्रचलित न हो तो केवल पुस्तकों की शोभा बढाते हैं जबकि लोकोक्तिया जनता की जिह्वा पर नृत्य करती रहती हैं।[123]

(4) व्यवहार-सूत्र कहावत तो है किन्तु भिनगे की अवस्था मे। पर उगने पर ही भिनगा उड सकता है। जब इसको लोक हृदय ने स्वीकार कर लिया हो और यह सर्व साधारण मे प्रचलित हो जाए, तभी व्यवहार-सूत्र लोकोक्ति का रूप धारण करता है।[124]

(5) जनसाधारण की उक्ति होने के कारण लोकोक्ति को सूत्र, सूक्ति, मर्मोक्ति या सुभाषित से भिन्न समझना चाहिए, क्योकि सूक्ति आदि का सम्बन्ध विद्वानो, प्राज्ञो से है—वे प्राज्ञो की उक्तियाँ हैं। इसका तात्पर्य यह नही कि उन्हे लोकोक्तियो मे ग्रहण नही किया जाता। हिन्दी तथा अन्य भाषाओ मे कितनी ही लोकोक्तियाँ प्राचीन साहित्य एव लोक-साहित्य दोनो स्रोतो मे आई हैं।. .पारस्परिक आदान-प्रदान के कारण अनेक लोकोक्तियो को देखकर यह कहना कठिन हो जाता है कि कौन जन-साधारण की उक्ति थी, जिसने काव्यात्मकरूप धारण कर लिया और कवि की उक्ति भी जो लोकोक्ति बन गई।[125]

(6) इतिहास को प्रत्यक्ष कर जब हम देखते हैं तब लोकोक्ति का विकास ही प्रकारान्तर से सूक्ति या सुभाषित बन जाता है। लोक की उक्ति लोकोक्ति है, वही जब कवि विशेष द्वारा उद्गरित हुई तो सूक्ति हो गयी, सुभाषित हो गयी। अत ये तीनो नाम सूक्ति सुभाषित-लोकोक्ति एक ही सज्ञा के पर्याय हैं।...जैसे लोकोक्ति का अर्थ

है—लोक (विराट् समाज) की उक्ति अर्थात् मान्यता, नीति वचन, वैसे ही सूक्ति का सामान्य अर्थ है—सु-उक्ति. सुन्दर या सौष्ठवपूर्ण कथन, शब्द अर्थ या ललित-अन्वर्थ विधान। सामान्य लोकवाणी से विचित्र, प्रभावकारी विशेष कथन को ही आरम्भ मे सूक्ति कहा गया।[126]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निम्न निष्कर्ष प्राप्त होते हैं—

(1) प्राज्ञोक्ति मे निहित पाण्डित्य, चिन्तन, तत्त्वज्ञान एव उच्चादर्श से भिन्न लोकोक्ति सरस एव स्वत: प्रसूत होने के कारण नीति-शिक्षा, उपदेशात्मकतादि से रहित होती है।

(2) प्राज्ञोक्ति मे नैतिकता का अभाव होता है; जबकि लोकोक्ति मे व्यावहारिकता एव नैतिकता दोनो का युगपत् समन्वय होता है।

(3) प्राज्ञोक्ति अथवा व्यवहार-सूत्र ही लोक-प्रचलित होकर लोकोक्ति का रूप धारण कर लेते हैं।

(4) लोकोक्ति जन-साधारण की युक्ति होने के अतिरिक्त प्राज्ञो की भी उक्ति है। लोकोक्ति के लोक-साहित्य एव शिष्ट-साहित्य (प्राचीन साहित्य) दोनो ही स्रोत हैं।

(5) लोक की उक्ति जब कवि द्वारा उद्गरित होती है तो सूक्ति बन जाती है।

उपर्युक्त निष्कर्षों मे प्रथम मन्तव्य पूर्णत: मान्य नही है। इसका कारण यह है कि लोकोक्ति मे प्राज्ञोक्ति जैसा तत्त्व-चिन्तन, नीति-कथन व उपदेशात्मकता के दर्शन होते हैं, किन्तु लोक-प्रिय होकर प्राज्ञोक्ति जहा लोकोक्ति बन जाती है, वहा प्रचलन के अभाव मे अनुपयोगी बनकर पुस्तको तक सीमित रह जाती है। द्वितीय निष्कर्ष द्वारा इसकी पुष्टि होती है कि प्राज्ञोक्ति जहा सीमा पूर्ण है, उसमे व्यावहारिकता का अभाव रहता है, वहा लोकोक्ति मे नैतिकता के साथ व्यावहारिकता के भी एकत्र दर्शन होते हैं। यही कारण है कि लोकोक्ति का सम्मान लोक एव शास्त्र दोनो के द्वारा होता है। निष्कर्षत. कहा जा सकता है कि सूक्तियो (प्राज्ञोक्तियो) एव लोकोक्तियो मे भिन्नता का आधार प्रचलन है। प्राज्ञोक्तिया जहा प्राज्ञो द्वारा निर्मित होकर शास्त्रो अथवा विद्वद्समुदाय मे ही सम्मानित रहती हैं, वहा लोकोक्तिया लोकप्रिय होकर देश-देशान्तर तक भ्रमण करती हुई सार्वदेशिक सम्पत्ति बन जाती हैं।●●

मुहावरा : स्वरूप-विवेचन

मुहावरा-विमर्श

यह शब्द महाविरा, म्हावरा, मुहावरा, मुहाविरा, मुहव्वरा, मुहावुरा एवं महावुरः आदि के रूपों में भिन्न-भिन्न ढंग से लिखा हुआ प्राप्त होता है, इससे यह प्रश्न उपस्थित होना स्वाभाविक है कि इसका शुद्ध रूप कौन-सा है ? 'लुगात किश्वरी' में इसके विषय में लिखा है कि इस शब्द के 'मीम' (م)पर 'पेश'(ُ)

जो 'उ' की मात्रा का प्रतीक है और 'वाव'(و)पर 'ज़बर'(َ)

जो 'अ' की ध्वनि देता है—लगा है ।[127] इस आधार पर मुहावरा (مُحَاوِرا) ही शुद्ध एवं उपयुक्त शब्द प्रतीत होता है। इस शब्द की व्युत्पत्ति एवं अर्थ के विषय में विवाद का प्रायः अभाव है। 'मुहावरा' शब्द अरबी भाषा का शब्द है, जिसकी व्युत्पत्ति

'हौर'(حَوَر)—(हे-वाव-रे) से हुई है। 'गयासुल्लुगात' में इसके विषय में कहा गया है—'मुहावरा बिज़्ज़म मीम, मफ़तेह, वाव्, बायक, दीगर कलाम करदन व पासुख़ दादन यक दीगर—अज़ से राह् बकज्ज वगैर आ।[128] इसका हिन्दी-अनुवाद करके 'लुगात किश्वरी' में कहा गया है—'मुहावरे का अर्थ है आपस में कलाम (बातचीत करना), एक-दूसरे को जवाब देना, गुफ़्तगू-बातचीत (यक दीगर कलाम करदन व पासुख़ दादन) आदि।[129]

'फ़रहंग आसफिया जिल्द चहारुम' में अपेक्षाकृत विस्तृत एवं सुस्पष्ट प्रतिपादन किया गया है—'मुहावरा इस्म मुज़क्कर (संज्ञा, पुल्लिंग),

(1) हम कलामी, बाहम गुफ़्तगू, सवाल जवाब।

(2) इस्तिलाह् आम, रोज़मर्रा, वह कलमा या कलाम जिसे चन्द सकात (विश्वासपात्र) ने लगवी मानी कि मुनासिबत या गैरमुनासिबत से किसी खास मानी के वास्ते मुख़्तस (रूढ) कर लिया गया हो। जैसे 'हैवान' से कुल जानदार मक़सूद (अभिप्रेत) है, मगर मुहावरे में गैर ज़ौउल-अक़्ल (बुद्धिहीन) पर उसका इतलाक़ (प्रयोग) होता है और ज़ौउल-अक़्ल (बुद्धिमान) को इन्सान कहते हैं।

(3) आदत, चस्का, महारत (कुशलता), मश्क (अभ्यास), रब्त-जैसे मुझे अब इस बात का मुहावरा नहीं रहा।[130]

मुहम्मद मुस्तफा खा मद्दाह ने उर्दू-हिन्दी शब्दकोश मे मुहावरे के प्रचलित पर्यायो मे मुहर्रफ, मुहर्रिफ, मुहावरत तथा मुहावरात आदि शब्द दिए हैं।

मुहर्रफ –टेढा किया हुआ, वक्रित, वक्र, फेरी हुई बात या इबारत मूल अर्थ से हटाया हुआ।

मुहर्रिफ—टेढा करने वाला, बात को कुछ का कुछ बनाने वाला।

मुहावरा—रोजमर्रा, बोलचाल, किसी भाषा के वाक्यो का वह प्रयोग जो उस भाषा के बोलने वाले करते हैं और जिसका अर्थ अभिधेय अर्थ से पृथक् होता है।[131] इन शब्दो के अतिरिक्त उर्दू मे मुहावरे के लिए 'तर्जे कलाम' तथा 'इस्तलाह' आदि शब्द प्रयुक्त होते हैं। 'मुहावरा' अरबी शब्द होते हुए भी हिन्दी और उर्दू मे अरबी की अपेक्षा व्यापक अर्थ मे प्रयुक्त होता है।[133] 'मुहावरा' से मिलते जुलते शब्द हैं—मुहावरत और मुहावरात। मुहावरत शब्द का अर्थ है—आपस में बातचीत करना तथा मुहावरात मुहावरे का बहुवचन है।[133]

आग्ल भाषा मे मुहावरे के पर्याय के रूप मे इडियम (Idiom) शब्द का प्रयोग होता है। अग्रेजी मे यह शब्द लैटिन और फ्रेंच मे होता हुआ ग्रीक भाषा से आया है। डॉ० ओम्प्रकाश गुप्त इसके इतिवृत्त के विषय मे लिखते हैं—'सोलहवी शताब्दी मे ग्रीक शब्द 'इडियोमा' (Idioma) से लैटिन मे (Idioma) 'इडियोमा' फ्रेंच से इडियोटिस्म (Idiotisme) के रूप मे वही शब्द अग्रेजी मे आया। व्युत्पत्ति की दृष्टि से यह शब्द मूढता की ओर सकेत करता है। 'इडियट' शब्द से सबोधित होने के नाते 'इडियोसी' की ध्वनि भी इससे निकलती है। अब अग्रेजी मे इस शब्द का प्राय लोप हो गया और इसके स्थान पर 'इडियम' शब्द का प्रयोग होने लगा है।[134] सोलहवी शताब्दी के अनन्तर कदाचित् सत्रहवी शताब्दी के आसपास इडियोटिज्म के स्थान पर 'इडियम' शब्द मुहावरे के लिए प्राय सर्वमान्य हो गया होगा और वर्तमान काल मे 'इडियम' शब्द ही इसके लिए रूढ हो चुका है। आग्ल भाषा के प्राय. सभी कोशो मे इसी शब्द को ग्रहण किया गया है।

डॉ०मोनियर विलियम्स ने 'मुहावरा' शब्द के निम्न सस्कृत पर्याय स्वीकार किए हैं—वाग्रीति, वाग्वृत्ति., वाग्व्यापार, वाग्व्यवहार, वाग्धारा, विशेष वाक्य, विशेष वचन, सविशेष वाक्य, भाषा विशेषण, विशेष भाषा, विशिष्ट वचन, विशिष्ट वाक्य, विशिष्ट भाषा, भाषा लक्षण, भाषा वच्छेद, अवच्छेदक वाक्य तथा सप्रदाय।[135] इन पर्यायो द्वारा 'मुहावरा' शब्द के वास्तविक अर्थ का सम्यक् बोध नही हो पाता, किन्तु इसका तात्पर्य यह नही कि सस्कृत मे मुहावरो का प्रयोग नही हुआ। कुछ विद्वानो ने वाक् पद्धति, भाषा सम्प्रदाय, आदि शब्दो को इसका उपयुक्त पर्याय भी स्वीकार किया है। प० रामदहिन मिश्र ने 'भाषा सम्प्रदाय' को तथा डॉ० कृष्णचन्द्र शर्मा ने 'वाक् पद्धति' शब्द को उचित पर्याय माना है। प० रामदहिन मिश्र के अनुसार—सस्कृत तथा हिन्दी में मुहावरा शब्द के यथार्थ अर्थ का बोधक कोई शब्द नहीं है।

प्रयुक्तता, वाग्रीति, वाग्धारा और भाषा-सम्प्रदाय आदि शब्दो को इसके स्थान में रख सकते हैं। हिन्दी मे मुहावरे के बदले विशेषत 'वाग्धारा' शब्द का व्यवहार देखा जाता है किन्तु मुहावरा शब्द के बदले 'भाषा सम्प्रदाय' शब्द लिखना यही अच्छा है, क्योकि वाग्रीति, वाग्धारा और प्रयुक्तता इन तीनो शब्दो का अर्थ इससे ठीक-ठीक झलक जाता है और भाषागत अन्यान्य विषयो का आभास भी मिल जाता है।[136] प० रामदहिन मिश्र द्वारा मान्य 'भाषा सम्प्रदाय' पर्याय प्रचलन के अभाव मे स्वीकृत न हो सका। अन्य कुछ विद्वानो ने इसके लिए अन्यान्य शब्दो का प्रयोग किया, किन्तु प्राय मान्य न हो सके। डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय के अनुसार कुछ विद्वानो ने 'वाग्रीति' या रमणीय प्रयोग' का व्यवहार इसके लिए किया है, परन्तु वास्तव मे ये उपयुक्त नही जचते क्योकि इनसे 'मुहावरे' के भाव का सम्यक् प्रकाशन नही होता।[137] जहा तक मुहावरो का सस्कृत मे प्रयोग का प्रश्न है, निस्सदेह वहा इनका प्रयोग-बाहुल्य है। सस्कृत मे मुहावरो के लिए कोई उपयुक्त पर्याय चाहे न मिलता हो किन्तु मुहावरो का इस भाषा मे कभी अभाव नही रहा। 'अगुलिदाने भुज गिलसि' (आर्या सप्तशती) तथा 'ईदश राजकुल दूरे वन्दयताम्' (कर्पूर मजरी) जैसे प्रयोग सस्कृत ग्रन्थो मे प्राय उपलब्ध होते हैं। इतना सब कुछ होते हुए भी सस्कृत भाषा मे मुहावरो का जो सैद्धान्तिक विश्लेषण नही मिलता, इसका सभवत कारण यही है कि सस्कृत के आचार्य मुहावरो को लक्षणा के अन्तर्गत मानकर चले हैं।[138] गुजराती भाषा मे मुहावरे के लिए प्रयुक्त शब्द 'रूढि प्रयोग' के विषय मे श्री रामचन्द्र वर्मा लिखते हैं—लक्षणा के हमारे यहा दो भेद किए गए हैं—रूढा लक्षणा और प्रयोजनवती लक्षणा—इनमे से रूढा लक्षणा मे वे शब्द प्रयोग आते हैं जो रूढ या प्रचलित हो जाते हैं और प्रयोजनवती लक्षणा मे किसी प्रयोजनवश शब्दो के अर्थ मे विशेषता आती है। स्स्वत मुहावरा हमारे यहा की रूढा लक्षणा के अन्तर्गत आता है। अत हम मुहावरे को 'रूढि' और मुहावरेदार को 'रूढ' कह सकते हैं। हमे इसके लिए एक दूसरा शब्द 'वाक् सम्प्रदाय' भी सुझाया गया है, पर यह शब्द बहुत बडा है, अत यदि मुहावरे के लिए रूढि' शब्द ही रूढ हो जाए तो कोई हर्ज नही। और फिर यदि अपने यहा कोई उपयुक्त शब्द न होने के कारण हम स्वय 'मुहावरा' शब्द भी चलने दें तो यह कोई कलक या लज्जा की बात नही है।[139] 'रूढि' शब्द के प्रयोग के लिए वर्मा जी स्वय आग्रही नही हैं। उनके मतानुसार उपयुक्त शब्द के अभाव मे 'मुहावरा' शब्द को यथावत् ग्रहण करना उचित है। इससे स्पष्ट है कि 'मुहावरे' के लिए 'रूढि' शब्द का प्रस्ताव उपयुक्त प्रतीत नही होता। 'मुहावरे' के विस्तृत आयाम को रूढा-लक्षणा तक ही सीमित नही किया जा सकता। मुहावरा-मीमासाकार ने मुहावरे के स्थान पर विभिन्न विद्वाना द्वारा प्रयुक्त-वाक् सम्प्रदाय, विशिष्ट प्रयोग, वाक् वैचित्र्य, वाग्योग तथा इष्टप्रयोग आदि बारह नामो का उल्लेख किया है। इस विषय मे स्पष्ट मत है कि इन बारह शब्दो मे स कोई भी शब्द मुहावरे के सही पर्यायवाची शब्द के रूप मे नही रखा जा सकता।[140] यद्यपि अनेक हिन्दी विद्वानो ने 'मुहावरे' के लिए विभिन्न पर्यायवाची शब्दो के अन्वेषण का स्तुत्य प्रयत्न किया है, किन्तु अद्यावधि मुहावरे के समान लोक रुयात एव विद्वज्जनो

द्वारा सर्वमान्य किसी पर्याय का निर्धारण नही हो सका है। ऐसी स्थिति मे 'मुहावरा' शब्द को यथावत् रूप मे ग्रहण करना ही युक्तिसगत प्रतीत होता है।

मुहावरे की परिभाषा एव रूप-संरचना

मुहावरे के विषय मे विभिन्न कोशो मे अपनी-अपनी दृष्टि से विचार किया गया है। आग्ल भाषा के विभिन्न विश्वकोशो एवं अन्यान्य कोशो मे एतद्विषयक विस्तृत विवेचन किया गया है। एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका मे मुहावरे के पर्याय 'इडियम' शब्द के विषय मे कहा गया है—1 किसी भाषा के लिए शब्दो, व्याकरण-सम्बन्धी रचनाओ, वाक्य-रचनाओ इत्यादि के वर्णन का विशिष्ट ढग, 2. कभी-कभी किसी विशेष भाषा की विचित्रता भी, 3 एक विभाषा (ग्रीक इडियोमा) कोई विचित्र और व्यक्तिगत चीज 'मुहावरा' है।[141]

वेबस्टर के अन्तर्राष्ट्रीय कोश के अनुसार—1. (अ) किसी भाषा के विशेष ढाचे मे ढला वाक्य (आ) वह वाक्य जिसकी व्याकरण-सम्बन्धी रचना उसी के लिए विशिष्ट हो और जिसका अर्थ उसकी साधारण भाषा शब्द-योजना से न निकल सके, 2 किसी एक लेखक की व्यजना शैली का विषय, रूप अथवा वाग्वैचित्र्य। यथा—ब्राउनिंग के दुरूह मुहावरे।[142]

'डिक्शनरी आफ द इगलिश लेंगुएज' के आधार पर 'मुहावरा' अथवा 'इडियम' फ्रेंच इडियोमी 1 सार्वलौकिक व्याकरण अर्थात् भाषा के प्रचलित नियमो के व्यवहार से सर्वथा बाहर और किसी एक बोली के स्वभाव से बधा हुआ बोलने अथवा लिखने का ढग, किसी भाषा के लिए विशिष्ट वर्णन शैली 2 किसी भाषा का विचित्र स्वभाव 3. एक विभाषा अथवा भाषा की विचित्रता है।[143]

इम्पीरियल डिक्शनरी के अनुसार मुहावरा 1. किसी भाषा की विशिष्ट वाक्य-शैली, वर्णन अथवा शब्द विन्यास की विशेषता, किसी भाषा अथवा लेखक के अभिप्राय से मुद्रित, उनकी व्याकरणिक तथा तार्किक युक्तियो से विलक्षण वाक्याश। 2 किसी भाषा की मुख्य या विशेष रुझान। 3 बोली, भाषा का विशेष रूप है।[144]

मरे के कोश के आधार पर मुहावरा 1 किसी जाति अथवा देश का मुख्य या विशेष बोलचाल का ढंग, निजी भाषा या बोली। सकीर्ण अर्थ मे किसी भाषा का वह भेद जो किसी सीमित क्षेत्र अथवा जाति मे प्रसिद्ध हो, बोली। 2 किसी भाषा का विशिष्ट गुण, स्वभाव या लक्षण, वर्णन का स्वाभाविक या विशिष्ट ढग। 3 किसी भाषा का विशिष्ट शैली या व्याकरणिक रचना है।[145]

आक्सफोर्ड डिक्शनरी के अनुसार 'मुहावरा' (1) (अ) किसी देश या जनसमूह अथवा उचित बोलने की भाषा या बोली की विशिष्टता है। (आ) किसी एक ऐसी भाषा का विशिष्ट रूप है जो किसी सीमित जनपद या लोगों के वर्ग अथवा बोली की मुख्य विशेषता है।

(2) किसी भाषा का विशिष्ट रूप, गुण या प्रज्ञा, अभिव्यक्ति का ढग जो कि

इसके प्रति स्वाभाविक और विशिष्ट है।

(3) किसी भाषा की अभिव्यक्ति का रूप व्याकरणिक सरचना, वाक्याश या पदावली आदि। किसी भाषा के प्रयोग द्वारा पदावली की विशिष्टता की मान्यता और व्याकरणिक एव तार्किक विशिष्टता के अतिरिक्त महत्त्व को 'मुहावरा' रखता है।

(4) विशेष रूप या गुण, विशेष प्रकृति विशेष रूप से इसमे होती है।[146]

इसमे सन्देह नही कि मरे के शब्द कोश एव आक्सफोर्ड कोश के मुहावरे विवेचन म पर्याप्त साम्य है। इनमे भाव साम्य के अतिरिक्त भाषिक समानता भी प्राप्त होती है। लोगन पीयरसल स्मिथ कृत 'वर्ड्स एण्ड इडियम्स' मे मुहावरे के बारे मे लिखा है—चूकि इस शब्द के बहुत अर्थ हैं, इसलिए मुझे इसकी उपयोगिता बता देनी चाहिए। 1 कभी-कभी फ्रेंच की तरह ही अग्रेजी में 'इडियम शब्द का अर्थ किसी जाति अथवा राष्ट्र की विलक्षण वाक शैली होता है। (2) फ्रेंच शब्द इडियोटिस्मी के स्थान मे भी हम लोग 'इडियम' शब्द का प्रयोग करते हैं। अर्थात् व्युत्पत्तिलभ्य और युक्तिसगत अर्थ की दृष्टि से भिन्न अर्थ देते हुए भी जो कहने का ढग, व्याकरण सम्बन्धी रचना अथवा वाक्य रचना किसी भाषा की प्रयोग-सिद्ध विशेषता हो, मुहावरा है (3) भाषा और जातिगत स्वभाव। (4) व्याकरण अथवा तर्क के नियमो का उल्लघन।[147]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निम्न निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं—

—मुहावरा किसी देश, जाति अथवा जनसमूह की विलक्षण वाक् शैली का नाम है।

—मुहावरा किसी भाषा का विशिष्ट रूप, गुण स्वभाव अथवा लक्षण है तथा एक व्याकरणिक रचना है।

—मुहावरा किसी भाषा का वह विशिष्ट वाक्याश या पदावली है, जिससे भाषा मे विचित्रता अथवा वार्वैचित्र्य की सृष्टि होती है।

—इसका अर्थ सामान्य भाषा एव उसकी शब्द योजना से ग्राह्य नही होता है। यह भाषा के विशिष्ट ढाचे मे ढला हुआ होता है।

यद्यपि 'मुहावरा' शब्द अरबी भाषा का है तथा 'हिन्दी' मे फारसी' के माध्यम स आया है, तथापि हिन्दी के मान्य विद्वानो द्वारा एव विभिन्न शब्द कोशो मे एतद्-विषयक चिन्तन मनन किया गया है। हिन्दी शब्द कोशो मे इसका विवेचन इस प्रकार है—

भाषा विज्ञान कोश के अनुसार—मुहावरा भाषा-विशेष म प्रचलित प्रयोग, वाक्याश या कुछ पदो या शब्दो का समूह, जिसका लक्ष्यार्थ या व्यग्यार्थ लिया जाता हो, मुहावरा कहलाता है। इसका अर्थ अभिधार्थ से भिन्न है।[148]

हिन्दी शब्द-सागर के आधार पर—मुहावरा लक्षणा या व्यजना द्वारा सिद्ध वाक्य या प्रयोग जो किसी एक ही बोली अथवा लिखी जाने वाली भाषा में प्रचलित हो और जिसका अर्थ प्रत्यक्ष (अभिधेय) अर्थ से विलक्षण हो। किसी एक भाषा मे दिखाई पड़ने वाली असाधारण शब्द-योजना अथवा शब्द प्रयोग। जैसे—'लाठी खाना' मुहावरा

है, क्योकि इसमे 'खाना' शब्द अपने साधारण अर्थ मे नही आया है, लाक्षणिक अर्थ मे आया है। लाठी खाने की चीज नही है पर बोलचाल मे लाठी खाने का अर्थ लाठी का प्रहार सहना किया जाता है। इसी प्रकार 'गुल खिलाना', 'घर करना', 'चमडा खीचना' 'चिकनी चुपडी बातें करना' आदि मुहावरे के अन्तर्गत हैं। कुछ लोग इसे रोजमर्रा या बोलचाल कहते हैं। अभ्यास, आदत जैसे आजकल मेरा लिखने का मुहावरा छूट गया।[149]

फारसी एव अग्रेजी विद्वानो द्वारा मुहावरे के लिए प्रयुक्त असाधारण अथवा विशिष्ट शब्द-योजना के स्थान पर हिन्दी-कोशकारो ने अर्थ-तत्त्व के लिए लक्षणा एव व्यजना शब्द-शक्तियो का व्यवहार इसलिए किया है, क्योकि भारतीय काव्य शास्त्र मे शब्द शक्तियो—अभिधा, लक्षणा एवं व्यजना का विस्तारश प्रतिपादन किया गया है, किन्तु फारसी व अग्रेजी काव्य शास्त्र मे यह विवेचन अप्राप्त था, अत: हिन्दी कोशकारो ने शब्दशक्तिमूलक प्रयोगो के आधार पर इस समस्या का समाधान किया।

हिन्दी कोशकारो के अतिरिक्त अन्य विद्वानो द्वारा भी मुहावरे की परिभाषा एव स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है। श्री ब्रह्मस्वरूप शर्मा 'दिनकर' मुहावरे का परिचयात्मक बोध कराते हुए लिखते हैं—'मुहाविरा'—(i) अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है बातचीत करना अथवा प्रश्न का उत्तर देना परन्तु परिभाषित हो जाने के कारण विलक्षण अर्थ मे मुहाविरो का प्रयोग किया जाता है। जैसे—लज्जित होना। (ii) मुहाविरे का निर्माण किसी व्यक्ति विशेष द्वारा नही होता, अनेक व्यक्तियो के द्वारा बहुत दिनो तक एक वाक्याश विलक्षण अर्थ मे प्रयुक्त होने के कारण 'मुहाविरा' बन जाता है। (iii) वाक्याश होने के कारण मुहावरे मे उद्देश्य और विधेय का अभाव होता है।[150]

श्री रामचन्द्र वर्मा 'अच्छी हिन्दी' मे 'क्रियाए और मुहावरे' के अन्तर्गत मुहावरे का विवेचन करते हुए लिखते हैं—(1) शब्द और क्रिया-प्रयोगो के योग से कुछ विशिष्ट पद बना लिए जाते हैं जो मुहावरा कहलाते हैं। अर्थात् मुहावरा उस गठे हुए वाक्याश को कहते हैं जिससे कुछ लाक्षणिक अर्थ निकलता है और जिसकी गठन मे किसी प्रकार का अन्तर होने पर लाक्षणिक अर्थ नही निकल सकता।[151]

डॉ० उदय नारायण तिवारी ने भोजपुरी मुहावरो का विवेचन करते हुए मुहावरे के निम्न दो लक्षण निर्धारित किए हैं—(1) हिन्दी-उर्दू मे लक्षणा अथवा व्यजना द्वारा सिद्ध वाक्य को ही 'मुहावरा' कहते हैं। (2) मुहावरे के अर्थ मे अभिधेयार्थ से विलक्षणता रहती है।[152]

श्री राम नरेश त्रिपाठी के अनुसार मुहावरे की दो विशेषताए हैं—मुहावरा वाक्य के बाहर कभी नही जाता और 'मुहावरा' अपना असली रूप नही बदलता।[153]

प० रामदहिन मिश्र ने मुहावरे का समीचीन विवेचन प्रस्तुत किया है। उन्होने अपनी पुस्तक 'हिन्दी मुहावरे' मे तत्सम्बन्धी विभिन्न कोशकारो एव समीक्षको के मन्तव्यो को सार रूप मे एकत्र कर इसकी द्वादश मान्यताए वर्णित की हैं—(1) कितने ठीक-ठीक खेल, शैली व बोलने के ढग को मुहावरा मानते हैं। जैसे जडाऊ के तरह-तरह के गहने।

यहा तरह-तरह के जडाऊ गहने लिखना मुहावरा है। (2) कोई-कोई व्याकरण-विरुद्ध होने पर भी सुलेखक के लिखे होने का कारण किसी-किसी शब्द और वाक्य को मुहावरा बतलाते हैं। जैसे—उपरोक्त (उपर्युक्त) सराहनीय (श्लाघनीय) (3) कोई-कोई कहावत को ही मुहावरा कहते हैं—नौ नकद न तेरह उधार (4) कोई-कोई विलक्षण अर्थ प्रकाशित करने वाले वाक्य को ही मुहावरा कहते हैं। जैसे—बाल की खाल निकालना। (5) कितने भगी-पूर्वक अर्थ-प्रकाशन के ढग को ही मुहावरा कहते हैं। जैसे—फारसी भाषा के कवियो ने इस नई भाषा को शाहजहानी बाजार मे अनवस्था मे इधर-उधर फिरते देखा। उन्हें इसकी भोली सूरत पसद आई, वह इसे अपने घर ले गए। (6) बहुतो ने शब्द या वाक्य को भिन्नार्थ बोधक होने से ही मुहावरा माना है। जैसे—आख, यह अन्याय कब तक चलेगा। (7) कोई-कोई आलकारिक भाषा को ही मुहावरा कहते हैं। यथा—वसन्त बरसो पेरे, नेत्रो के सामने सब नाचने लगते हैं। (8) बहुत लोग विचित्र रूप से अर्थ प्रकट करने वाले वाक्य को मुहावरा कहते हैं। यथा—अग्रेजो के राज्य मे बाघ-बकरी एक घाट पर पानी पीते हैं। (9) कोई-कोई एक खास अर्थ के बोधक वाक्य को मुहावरा कहते हैं। यथा—लघु शका करते जाओ। (10) कोई-कोई एकार्थ मे वह क्रिया आदि को मुहावरा कहते हैं जैसे—हाथी चिग्घाडता है, घोडा हिनहिनाता है। (11) कोई-कोई प्रचलित शब्द प्रयोग को ही मुहावरा बतलाते हैं—जैसे नेहर की जगह 'मैके' आदि। (12) कोई-कोई किसी विषय पर प्राय प्रयुक्त होने वाले शब्द या वाक्य लाने को ही मुहावरा कहते हैं। जैसे—किसी के राज्य वर्णन मे राम-राज्य कह देना।[154] यहा प० रामदहिन मिश्र ने मुहावरे सम्बन्धी लोगो के भ्रम का निवारण किया है। कहावत और मुहावरे मे पर्याप्त भिन्नता है, जिसका अन्यत्र वर्णन किया गया है। प्रत्येक भगिमापूर्ण वाक्याश मुहावरा नही बन सकता, यद्यपि मुहावरो मे वैदग्ध्य के दर्शन होते हैं। इसी प्रकार आलकारिकता आदि मुहावरे की महत्त्वपूर्ण विशेषताएं हैं, तथापि प्रत्येक आलकारिक कथन मुहावरा नही हो सकता। मुहावरे के निर्धारित स्वरूप से अपरिचित होने के कारण ही कुछ लोग भ्रमवश होकर किसी-किसी क्रियापद आदि को ही मुहावरा समझने की भूल करते हैं। हिन्दी के अनेक विद्वानो ने मुहावरे का स्पष्टत स्वरूप-निर्धारित करने का साधु प्रयत्न किया है। डॉ० रमेशचन्द्र ने अपने शोधप्रबन्ध मे मुहावरे के निम्नलिखित षड् लक्षण स्वीकार किए हैं—(1) मुहावरा वाक्याश होता है। (2) मुहावरा भाषा विशेष की विलक्षणता है जो भाव के किसी विशेष पहलू को व्यक्त करता है। एक भाषा के मुहावरो का दूसरी भाषा मे अनुवाद नही किया जा सकता। (3) मुहावरा शब्द का अर्थ है अभ्यास, स्वभाव या बातचीत। इसी अर्थ का प्रयोग भाषा मे भी होता है और इसी के कारण मुहावरा रूढिगत प्रयोग कहलाता है। (4) मुहावरे की उत्पत्ति विभिन्न शारीरिक चेष्टाओ, अस्पष्ट ध्वनियो के अनुकरण, कहानी, कहावतो, विभिन्न अलकारो तथा लक्षणा-व्यजना शब्द-शक्तियो आदि के आधार पर होती है। (5) मुहावरा ऐसा शब्दबद्ध रूप का नाम है जो व्याकरण के नियमो से निरपेक्ष होता है तथा प्रयुक्त शब्दो के मूल अर्थ से भिन्न अर्थ की व्यजना करता है। (6) मुहावरा भिन्न-भिन्न देश, जाति

अथवा समाज के भिन्न-भिन्न वर्गों की सूचक संज्ञा है।[155] इन लक्षणों के आधार पर डॉ० रमेशचन्द्र ने मुहावरे का स्वरूप स्थिर किया है। इसे परिभाषित करते हुए वे लिखते हैं—मुहावरा किसी लिखित अथवा कथ्य भाषा में प्रचलित वह वाक्यांश है जिसका अर्थ प्रत्यक्ष (अभिधेय) अर्थ से विलक्षण होने के कारण लक्षणा अथवा व्यंजना द्वारा सिद्ध हो। उदाहरणार्थ 'मार खाइवो' वाक्यांश एक मुहावरा है, क्योंकि इसमें 'खाइवो' अपने साधारण अर्थ में न आकर लाक्षणिक अर्थ 'सहन करना' में प्रयुक्त हुआ है, किन्तु 'नदी के किनारे पै' वाक्यांश कोई भी विलक्षण अर्थ न प्रस्तुत करने के कारण मुहावरा नहीं है। अतः यह कथन कि 'सब मुहावरे वाक्यांश होते हैं परन्तु सब वाक्यांश मुहावरे नहीं होते', सर्वथा युक्ति-युक्त एवं समीचीन है।[156]

डॉ० ओमप्रकाश गुप्त ने मुहावरा-मीमांसा में मुहावरे की परिभाषा इस प्रकार प्रस्तुत की है—प्रायः शारीरिक चेष्टाओं, अस्पष्ट ध्वनियों, कहानी और कहावतों अथवा भाषा के कतिपय विलक्षण प्रयोग के अनुकरण या आधार पर निर्मित और अभिधेयार्थ से भिन्न कोई विशेष अर्थ देने वाले किसी भाषा के गठे हुए रूढ़ वाक्य, वाक्यांश अथवा शब्द इत्यादि को मुहावरा कहते हैं। जैसे—हाथ-पैर मारना, सिर धुनना, अंगारों पर लोटना, आग से खेलना आदि।[157] डॉ० ओमप्रकाश गुप्त ने इस परिभाषा में तीन तथ्यों पर विशेष बल दिया है, ये हैं—(क) मुहावरों का निर्माण भाषा आदि कुछ विलक्षण प्रयोग के अनुकरण अथवा आधार पर होता है। (ख) मुहावरे अभिधार्थ से भिन्न विशिष्ट अर्थ के द्योतक होते हैं तथा (ग) ये किसी भाषा के गठे हुए रूढ़ वाक्य, वाक्यांश अथवा शब्द होते हैं।

डॉ० प्रतिभा अग्रवाल अपने शोध-प्रबन्ध 'हिन्दी मुहावरे' में इसकी लाक्षणिकता पर विचार करती हुई लिखती है—मुहावरा लाक्षणिक प्रयोग है और इसके द्वारा भाषा को वक्रता एवं चुटीलापन प्राप्त होता है। 'लाक्षणिक प्रयोग' कहने का तात्पर्य यह नहीं समझना चाहिए कि लाक्षणिक प्रयोग और मुहावरा समानार्थी हैं एवं हर लाक्षणिक प्रयोग मुहावरा है। लाक्षणिकता के साथ ही साथ दूसरा अनिवार्य गुण अपेक्षित है—रूढ़ होना अर्थात् उस विशेष अर्थ में वह लाक्षणिक प्रयोग रूढ़ एवं जनप्रचलित हो। इस गुण अभाव में मुहावरा मुहावरा हो ही नहीं सकता। लाक्षणिक प्रयोग एवं मुहावरों के बीच सीमा रेखा खींचना सरल नहीं। कहाँ कौन-सा लाक्षणिक प्रयोग, अपनी विशुद्ध आलंकारिकता छोड़कर मुहावरे की सीमा स्पर्श करता है, और कहाँ अपनी सीमा में ही बद्ध आलंकारिक प्रयोग मात्र है, यह कहना कठिन है।[158] प्रस्तुत विवेचन में डॉ० अग्रवाल ने मुहावरे एवं लक्षणा शब्द-शक्ति के सम्बन्ध-स्थापन में जिस बात पर विशेष बल दिया है, वह यह है कि मुहावरा लाक्षणिक प्रयोग का पर्याय न होकर अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखता है। डॉ० अग्रवाल मुहावरे को परिभाषित करती हुई लिखती हैं—मुहावरा वह विशिष्ट पद-रचना है जो अभिधेयार्थ से भिन्न कोई विशेष लाक्षणिक अर्थ को सम्मुख रखती है या किसी अभिधेयार्थ को गौण बनाकर कोई विशेष अर्थ की ध्वनि देती है।[159]

उपर्युक्त मन्तव्यो के आधार पर निष्कर्षत कहा जा सकता है कि 'मुहावरा' एक पारिभाषिक शब्द है, जिसका प्रयोग विलक्षण अर्थ मे किया जाता है। अभिधेयार्थ से नितान्त भिन्न मुहावरा वह वाक्यांश है जो किसी भाषा के लाक्षणिक एव व्यंजनामूलक अर्थ मे लोक-विश्रुत होकर रूढ हो गया हो।

'मुहावरा' एव रोजमर्रा (बोलचाल)—हिन्दी शब्द-सागर में मुहावरे की परिभाषा देते हुए कहा गया है कि कुछ लोग इसे 'रोजमर्रा' या 'बोलचाल' भी कहते हैं।[160] इसलिए 'रोजमर्रा' एव 'मुहावरे' के साम्य वैषम्य पर विचार करना भी आवश्यक हो जाता है।

रोजमर्रा का प्रयोग सर्वप्रथम 'फरहग आसफिया' में प्राप्त होता है। इसके आधार पर श्री गया प्रसाद शुक्ल, प० रामदहिन मिश्र प्रभृति चिन्तको ने मुहावरे के निरूपण के साथ ही इसका भी विवेचन किया है। मौलाना 'हाली' अपनी कृति मुकदमा-शेरो शायरी' मे लिखते हैं कि मुहावरे के जो मानी हमे अव्वल (पहले) बयान किए हैं, वह आम यानी दूसरे माइनो (अर्थों) मे भी शामिल हैं, लेकिन दूसरे मानी पहले मानी से खास हैं। पर जिस तरकीब को लिहाज से भी मुहावरा कहा जायेगा, उसको दूसरे मानो के लिहाज से भी मुहावरा कहा जा सकता है, लेकिन यह जरूरी नहीं है कि जिस तरकीब (व्यापार) को पहले मानी के लिहाज से मुहावरा कहा जावे, उसको दूसरे माइनो (अर्थों) के लिहाज से भी मुहावरा कहा जावे। मसलन, 'तीन पाच करना' (झगडा टटा करना)। उसको दो मानो के लिहाज से मुहावरा कह सकते हैं क्योकि यह तरकीब अहले-जबान की बोलचाल के भी मुआफिक है, और चीज उसमे 'तीन पाच' का लफ्ज अपने हकीकी मानो मे नही, बल्कि मजाजी (साकेतिक) माने मे बोला गया है। लेकिन रोटी खाना या मेवा खाना या पाच-सात या दस-बारह वगैर सिर्फ पहले मानों के लिहाज से नही, क्योकि यह तमाम तरकीबें अहले जबान के मुआफिक तो जरूर हैं, मगर उनमे कोई लफ्ज मजाजी मानो मे इस्तेमाल नही हुआ।[161]

मौलाना 'हाली' के इस वक्तव्य के आधार पर 'मुहावरा सज्ञा से उसे अभिहित किया जा सकता है जो मजाजी मानो अर्थात साकेतिक अर्थ मे प्रयुक्त हुआ हो, जबकि 'रोजमर्रा के लिए इस प्रकार का कोई भी प्रतिबन्ध नही है अत साकेतिक अर्थ एक ऐसी विभाजक रेखा है जो रोजमर्रा को मुहावरे से पृथक् करती है।

मौलाना 'हाली' के मन्तव्य को स्पष्ट करते हुए श्री रामचन्द्र वर्मा लिखते हैं—कुछ लोग बोलचाल के प्रचलित और शिष्ट सम्मत प्रयोगो को ही मुहावरा समझते हैं, पर वास्तव मे वह 'मुहावरे' का दूसरा और गौण अर्थ है। यह वह तत्त्व है जिसे उर्दू वाले रोजमर्रा कहते हैं। यह 'रोजमर्रा' भी होता तो है—प्राय कुछ गढे हुए या निश्चित शब्दो मे ही, पर उन शब्दो से सामान्य अर्थ निकलता है। उस प्रकार का कोई विशेष अर्थ नही निकलता, जिस प्रकार का मुहावरे से निकलता है। जैसे—हम यह तो कहेंगे कि 'यह पाच सात दिन पहले की बात है', पर यह नही कहेंगे कि यह पाच-आठ दिन पहले की बात है या छह नौ दिन पहले की बात है। बोलचाल का बधा हुआ रूप

'दिन दूना और रात चोगुना' ही है। इसे हम रात दूना और दिन चौगुना नही कर सकते। कुछ सज्ञाओ के साथ जो कुछ विशिष्ट या निश्चित क्रियाएं आती हैं, वे इसी बोलचाल के तत्त्व की सूचक हैं।[162]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निम्न तथ्य उपस्थित होते हैं—

(क) बोलचाल का प्रचलित एव शिष्ट-सम्मत प्रयोग वस्तुत: मुहावरा न होकर उसका दूसरा और गौण अर्थ है।

(ख) यह गौण अर्थ उर्दू मे रोजमर्रा के नाम से प्रचलित है।

(ग) 'रोजमर्रा' का प्रयोग भी कुछ गढे हुए या निश्चित शब्दो मे ही होता है, पर उन शब्दो से सामान्य अर्थ ही द्योतित होता है।

(घ) मुहावरे के द्वारा कोई विशेष अर्थ अभिव्यजित होता है।

वर्मा जी ने मौलाना 'हाली' के विचारो को स्पष्टता प्रदान की है, इसमे सन्देह नही। वर्मा जी का सामान्य अर्थ मौलाना 'हाली' के हकीकी अर्थ के समानान्तर प्रयुक्त हुआ है और विशेष अर्थ मजाजी मानो के रूप मे आया है, अत मुहावरा हकीकी अथवा सामान्य अर्थ या अभिधेयार्थ से नितान्त भिन्न विशेष अर्थ अथवा मजाजी मानो मे प्रयुक्त होता है।

श्री अयोध्या सिंह उपाध्याय ने 'बोलचाल' नामक अपनी पुस्तक मे 'मुहावरे' व 'रोजमर्रा' के पारस्परिक सम्बन्ध का विस्तृत निरूपण किया है। वे लिखते हैं—"मुहावरे और रोजमर्रा या बोलचाल पर हमे दो दृष्टियो से विचार करना है—पहले भाषा की दृष्टि से उनकी अलग-अलग उपयोगिता और आवश्यकता पर, और दूसरे उन दोनो के पारस्परिक सम्बन्ध पर। जैसे मौलाना साहब ने कहा है—उपयोगी तो दोनों हैं, परन्तु आवश्यक जितना रोजमर्रा है, मुहावरा उतना नही। भाषा को यदि एक स्त्री मानें तो रोजमर्रा उसके शरीर की सावयवता और गठन तथा मुहावरे (उसके) किसी अग विशेष का सौन्दर्य है। रोजमर्रा का सम्बन्ध भावो के बाह्य परिधान, शब्दो के क्रम सानिध्य और इष्ट प्रयोग तक ही विशेष रूप से सीमित रहता है। आशय, तात्पर्य, अथवा व्यजना का उस पर कोई नियन्त्रण नही रहता, जबकि मुहावरे के लिए भावो के बाह्य परिधान, शब्द-क्रम इत्यादि के साथ ही उनसे अभिव्यजित तात्पर्यार्थ की रूढियों का पालन करना भी अनिवार्य है।[164] उदाहरण के द्वारा आगे अपनी बात स्पष्ट करते हुए वे लिखते हैं—'कुत्ते भौंकना' एक वाक्याश है। रोजमर्रा की दृष्टि से चूंकि कुत्ते के साथ 'भौंकना' क्रिया ही आनी चाहिए, इसलिए 'कुत्ते भौंकना' इसका अर्थ कोई झगडे की बात छेडना, किसी भी अर्थ मे लें, रोजमर्रा के पद से च्युत नही हो सकता; किन्तु यह वाक्यांश मुहावरा केवल अपने अर्थ मे ही हो सकता है, दोनो अर्थों में नही। सक्षेप मे हम कह सकते हैं कि बोलचाल या रोजमर्रा और मुहावरे मे वही सम्बन्ध है, जो शरीर और शरीरी मे होता है। जिस प्रकार शरीर के बिना शरीरी अति सुन्दर और प्रिय होने पर भी भूत और पिशाच ही समझा जाता है, कोई उसकी ओर आकृष्ट नही होता, उसी प्रकार रोजमर्रा (इष्ट प्रयोग) के बिना 'मुहावरा' सर्वथा अप्रिय और कर्ण कटु ही

लगता है।[165] इस प्रकार उपाध्याय जी के अनुसार—

(क) मुहावरे एव रोजमर्रा की तुलना मे आवश्यकता की दृष्टि से रोजमर्रा अपेक्षाकृत अधिक आवश्यक है, तथापि दोनो की उपयोगिता असंदिग्ध है।

(ख) रोजमर्रा भाषिक शरीर की सावयवता या गठन है तो विशेष का सौन्दर्य है।

(ग) रोजमर्रा भावो के बाह्य परिधान-शब्दो मे क्रम, सान्निध्य और इष्ट प्रयोग तक सीमित है वहा मुहावरे मे इनके साथ ही अभिव्यजित तात्पर्यार्थ की रूढियों का पालन भी अनिवार्य है।

(घ) इन दोनो मे परस्पर शरीर-शरीरी का सम्बन्ध होने के कारण भाषा मे दोनो की ही महत्त्वपूर्ण उपयोगिता एव आवश्यकता है।

इस आधार पर कहा जा सकता है कि गठन तथा वाक्य-विन्यास की दृष्टि से दोनो मे समानता है तथा भाषा मे दोनो की महत्त्वपूर्ण उपयोगिता एव अनिवार्यता है, किन्तु फिर भी सापेक्षता की दृष्टि से यदि रोजमर्रा शरीर है तो मुहावरा शरीरी। प्रथम यदि साधन है तो द्वितीय साध्य। प्रथम यदि भाषिक स्त्री की सावयवता है तो द्वितीय उसका लावण्य। अर्थ तत्त्व की दृष्टि से भी दोनो मे पर्याप्त भिन्नता है, क्योंकि प्रथम मे अभिधेयार्थ की विद्यमानता है तो द्वितीय मे साकेतिक अर्थ की, तथापि भाषा मे दोनो का ही महत्त्व है।

मुहावरे के साथ तुलना करते हुए विद्वानो ने पहेलिया, रोजमर्रा, सुभाषित, लौकिक न्याय, दृष्टिकूट, प्रतीक, सयुक्त क्रियाए तथा व्याकरण-तर्क आदि के साथ मुहावरे का साम्य-वैषम्य प्रदर्शित किया है[166], किन्तु विस्तार-भय से इसकी चर्चा सभव नही है। हा ! कई बार कुछ चलते क्रियापदो को मुहावरा समझने का भ्रम हो जाता है, अत युग्मक क्रियापद अथवा सयुक्त क्रियाए एव मुहावरे की तुलना आवश्यक हो जाती है। डॉ० अग्रवाल के शब्दो मे—हिन्दी साहित्य-भाषा मे प्रयुक्त कुछ सयुक्त क्रियाए ऐसी हैं जिनमे एक ही अर्थ मे दो क्रियाए आती हैं, जैसे मारपीट कर, बिना कहे-सुने आदि। ये युग्मक क्रियापद मुहावरेदानी के आस-पास पहुच जाते हैं, लेकिन वास्तव मे मुहावरे नही हैं। 'मारपीट करना', 'कहासुनी करना', 'ना' प्रत्यान्त होने पर ही ये मुहावरे होगे।[167]

मुहावरे एव सयुक्त क्रियाए—जब किसी क्रिया को कुछ विशिष्ट कृदन्तो के आगे जोड कर क्रिया बनती है, सयुक्त क्रिया कहलाती है, यथा—मरने/मारने लगना, खा/पी सकना, करने/मरने देना आदि मे कृदन्तो के आगे क्रमश लगना, सकना, देना क्रियाए जोडकर सयुक्त क्रिया बन गई है। सयुक्त क्रियाओ मे मुख्य क्रिया का कोई न कोई कृदन्त-रूप होता है और सहकारी क्रिया जो कृदन्त की विशेषता द्योतित करती है, काल के रूप मे रहती है। उठना, आना, करना, चाहना, चुकना, जाना, लगना, सकना, होना आदि क्रियाए इसी प्रकार की है, जो सयुक्त क्रियाओ म आती हैं। इन सहकारी

क्रियाओं या मुख्य क्रियाओं के साथ मेल होने से सयुक्त क्रियाओं में एक नवीन अर्थ उत्पन्न होता है, जिससे सयुक्त क्रिया और मुहावरे को एक मानने का भ्रम उत्पन्न हो जाता है, किन्तु इस प्रकार की सयुक्त क्रियाएं लक्षणा-व्यजना-सिद्ध न होने के कारण मुहावरे की श्रेणी में नहीं आती हैं। यथा—'माला टूट गई और मोती बिखर गए' वाक्य में 'गई' और 'गए' सहकारी क्रियाएं हैं। 'टूट गई' और 'बिखर गए' सयुक्त क्रियाएं हैं। 'टूट गई' सयुक्त क्रिया से मुक्ता व सूत्र के सम्बन्ध-विच्छेद का बोध होता है। इससे मिलता-जुलता एक मुहावरा है 'टूट पड़ना' जिसका अर्थ लक्षणा द्वारा होता है—पूरी शक्ति से साथ आक्रमण करना। इसके विपरीत अन्य मुहावरा है 'टूटी जुड़ना'। इसका अभिप्राय है—पुन सम्बन्ध स्थापित हो जाना। इसी प्रकार एक अन्य उदाहरण है—'पिता को आते देखकर लड़का उठ बैठा'। इस वाक्य में प्रयुक्त 'बैठा' सहायक क्रिया के द्वारा अविलम्ब-त्वरित उठने की क्रिया की व्यजना हुई, किन्तु धातुगत अर्थ में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ। इसके विपरीत 'उस लड़के का अपने साथियों के घरों में उठना बैठना है' इस वाक्य में व्यवहृत रेखांकित मुहावरे में धात्वर्थ का परिवर्तन हुआ है। इससे भी प्रकट है कि सयुक्त क्रिया एव मुहावरे में पर्याप्त पार्थक्य है।

सयुक्त क्रियापद एव मुहावरे में पारस्परिक भेद का एक अन्य आधार यह भी है कि सयुक्त क्रियापद में उच्चारण करते समय बलाघात-प्रधान क्रियापद रहता है और सहायक क्रियापद अल्पतर प्रयत्न से बोला जाता है, यथा—'वह चला गया होगा'। वाक्य में प्रयुक्त 'चला' प्रमुख क्रियापद और 'गया होगा' सहायक क्रियापद है। वाक्य बोलते समय बलाघात प्रथम क्रियापद 'चला' पर ही सुनाई देता है। इसके विपरीत मुहावरों का उच्चारण करते समय मुहावरे के दोनों पद समान होते हैं अर्थात् किसी एक पद पर बलाघात प्रमुख या गौण नहीं होता।[168] यथा—'राम आता है—सीता आती है'। यहां क्रियाएं कृदन्त तिङन्त (सयुक्त) हैं। 'आता-आती' कृदन्त मुख्य क्रियाएं हैं और 'है' तिङन्त, सहायक क्रिया।[169] किन्तु 'राम का श्याम के घर आना जाना है।' या "सीता श्यामा के पास आती जाती है'। इन वाक्यों में दोनों पद समान हैं। 'आने' की क्रिया से सम्बन्धित अनेक मुहावरे हैं, यथा 'आइ जुरी', 'आइ जुरे' या 'आइ परे'[170] आदि। इनका अभिप्राय है एकत्रित हो गई तथा एकाएक (विपत्ति आदि) उपस्थित हो गई। स्पष्ट है कि यहाँ मुहावरों में कोई एक पद प्रमुख या गौण न होकर दोनों पद समान रूप में प्रयुक्त हुए हैं।

लोकोक्ति एव मुहावरे में साम्य-वैषम्य

लोकोक्ति एव मुहावरे में पर्याप्त साम्य होने पर भी वस्तुत भिन्नता है। यद्यपि कुछ विद्वानों ने इनमें परस्पर अभेद स्थापित करने की चेष्टा की है। डॉ० स्मिथ एक स्थान पर लिखते हैं—कुछ लोकोक्तियां तथा लोकोक्तिपरक वाक्यांश भी हमारी बोलचाल की भाषा में घुल-मिल गए हैं, इन्हें भी शायद मुहावरा मान सकते हैं, यथा—

एक सिर से दो सिर अच्छे हैं (Two heads are better than one)

पुराने मूर्खों की तरह कोई मूर्ख नहीं है (No fool like an old fool)[171]
डॉ० स्मिथ ने अपने कथन की पुष्टि मे जो उदाहरण दिए हैं, वे लोकोक्तियो के ही उदाहरण है, मुहावरो के लक्षणो का इनमे अभाव है। डॉ० स्मिथ की भाति प० राम दहिन मिश्र भी 'हिन्दी मुहावरें' नामक अपनी पुस्तक मे मुहावरे के द्वादश लक्षणो मे एक लक्षण के अन्तर्गत इन दोनो के पारस्परिक भेद को समाप्त कर देते हैं—"कोई-कोई कहावत को भी मुहावरा कहते हैं—जैसे, नौ नकद न तेरह उधार, नौ की लकडी नब्बे खर्च, आदि।[172] डॉ० रमेशचन्द्र के अनुसार इन दोनो को अभिन्न समझने का प्रमुख कारण यह भी हो सकता है कि ये दोनो ही विलक्षण (असामान्य) अर्थ देते हैं, परन्तु इस एक समानता के अतिरिक्त इन दोनो मे रूपात्मक, अर्थपरक तथा अन्य दृष्टियो से भी भेद होता है।[173] वस्तुत डॉ० रमेशचन्द्र द्वारा कथित इन दोनो की समानता का आधार असामान्य अर्थ मात्र ही नही है, कुछ अन्य भी आधार हैं—यथा लोकोक्ति एव मुहावरे दोनो ही समान रूप से लोकप्रिय एव लोक-प्रचलित हैं, इनके उद्भव एव विकास का इतिहास भी एक समान है, दोनों ही कथन को रोचक एव प्रभावपूर्ण बनाते हैं तथा दोनो ही लक्षणा-व्यजना शक्ति से युक्त होते हैं, भाषा मे आलकारिकता, वाग्वैदग्ध्य आदि विशिष्टताओ के कारण चमत्कार की सृष्टि करते हैं आदि आदि।

डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा के अनुसार लोकोक्ति एव मुहावरे को अभिन्न समझे जाने का एक कारण यह भी है कि तनिक से परिवर्तन के साथ अनेक मुहावरे लोकोक्ति मे परिणत किए जा सकते है।[174] बहुत से मुहावरेदार वाक्यांश का प्रयोग कहावतो की भाति होता है और बहुत सी कहावतो के कलेवर मे मुहावरो का समावेश पाया जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि तनिक से परिवर्तन से मुहावरे कहावतो का और कहावतें मुहावरो का रूप धारण कर लेती हैं।[175] उदाहरण के लिए एक मुहावरा है—'उगली पकडते पहुचा पकडना', जिसका अर्थ है—अल्पाश्रय ग्रहण कर फिर पूर्णाधिकार जमाना। इस मुहावरे का प्रयोग अनेक कवियो द्वारा किया गया है, यथा—

—छवै छिगुली पहुचौ गिलत अति दीनता दिखाइ।
बलि बावन को ब्यौंतु सुनि को, बलि तुम्हे पत्याइ।
—कहा एती चतुराइ पढी आप जदुराई,
आगुरि पकरि पहुचा को पकरत हो।
- प्रथम देवरानी फिर सौत 'कहते हैं इसको ही
अगुली पकड प्रकोष्ठ पकड लेना।[176]

बिहारी ने इस मुहावरे का प्रयोग करते हुए 'उगली पकडने' के स्थान पर 'छवै छिगुली' तथा गुप्त जी ने 'पहुचा' की जगह 'प्रकोष्ठ' शब्द का प्रयोग किया है, किन्तु इससे मुहावरे का अर्थ परिवर्तित नही हुआ, अपितु कवि की नवोन्मेषशालिनी प्रज्ञा का परिचय प्राप्त होता है। मुहावरे का स्वरूप नष्ट नही हुआ। इधर सूरदास ने एक स्थान पर इस मुहावरे का लोकोक्ति परक प्रयोग किया है, जिसका भाव है—वह व्यक्ति जो अल्पाश्रय ग्रहण कर तदनन्तर पूर्णाधिकार जमाने का प्रयत्न करता है, अपने इस कार्य-

कलाप को गुप्त नहीं रख सकता, उसकी अधिकृत वस्तु आदि का भेद लोक को प्राप्त हो जाता है—

मधुरि गहत गह्यो जिहि पहुचो कैसे दुरति दुराए ।[177]

सूरदास का मुहावरे का लोकोक्तिपरक यह प्रयोग उनके लोक-ज्ञान का परिचायक है। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इनका परस्पर सम्बन्ध भी कम नही है। मुहावरों की परतन्त्रता से लाभ उठाकर अनेक लोकोक्तियो का निर्माण मुहावरों के आधार पर ही होता है। डॉ० मुक्तेश्वर तिवारी अपने अपने शोध-प्रबन्ध—'भोजपुरी लोकोक्तियां एवं मुहावरे' के अन्तर्गत इसी तथ्य की पुष्टि मे निम्नांकित उदाहरण प्रस्तुत कर विषय स्पष्ट करते हैं—

(क) 'घर के बबुआ बाहर गइलन—मुह सूखि के चोंवा भइलन।'
(ख) 'गरजू नचनिया अपनी तेले नाचल करें।'
(ग) 'काठ गढ़ले चीक्कन होला, बात गढ़ले दरार होला।'
(घ) 'कोखि खातिर गइलीं, मांगो गंवाइ के अइलीं।'
(ङ) 'जे दोसरा खातिर कुआं खोनेला, भगवान ओकेरा के भगाड़ खोने लन।'

इनमे पहली कहावत का तात्पर्य है कि "घर से बालक परदेश गया' उसका मुख सूखकर सूख कर चचुवत् हो गया। इस कहावत मे दो मुहावरे हैं 'बाहर गइलन' और 'मुह सूख कर चोंचा भइलन' दूसरी कहावत का तात्पर्य है, 'मजबूरी से अपना ही खर्च करके किसी का कार्य करना।' इसमे 'अपने तेले नाचल' मुहावरा है, जिसका अर्थ होगा अपना ही खर्च करके नाचना। तीसरी कहावत का मतलब होगा कि लकड़ी गढ़ने से चिकनी होती है, किन्तु बात गढने से कटुता बढ़ती है। इस कहावत मे 'बाति गढ़ल' मुहावरा है, जिसका तात्पर्य है 'बात बढाना'। चौथी कहावत का मतलब है पुत्र कामना के लिए गई, किन्तु पति भी गवा बैठी। इसमे 'कोख खातिर गइले' (पुत्र के लिए जाना) तथा माग गवा के आइल (पति गवाकर आना) ये दो मुहावरे हैं। इसी प्रकार पाचवी कहावत का अर्थ होगा—जो दूसरो का अहित चाहते हैं, भगवान् स्वय उसको कष्ट देते हैं। इस कहावत मे भी 'कुआ खोनल' (अनिष्ट चाहता) और 'भगाड़ खोनल' (कष्ट देना) ये दो मुहावरे हैं।[178] इससे ज्ञात होता है कि लोकोक्तियो के निर्माण मे मुहावरे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यही कारण है कि कही-कही इनका पारस्परिक भेद इतना सूक्ष्म होता है कि इनका पृथक्करण दुष्कर प्रतीत होता है। डॉ० सरोज अग्रवाल का कथन उपयुक्त ही प्रतीत होता है कि कहावतो और मुहावरो का यह भेद इतना सूक्ष्म होता है कि प्राय कहावतो को मुहावरे और मुहावरो को कहावतें समझ लिया जाता है। विभिन्न कहावत-कोशो मे कहावतो के साथ मुहावरे और 'मुहावरा-कोशो' मे मुहावरो के साथ कहावतें भी सम्मिलित कर दी गई हैं।[179] किन्तु मूलत लोकोक्तिया और मुहावरे अपना पृथक्-पृथक् अस्तित्व रखते हैं। पर्याप्त साम्य होने पर भी वस्तुत इनमे पारस्परिक अन्तर होता है। इनकी पारस्परिक भिन्नता के अनेक ऐसे आधार हैं, जिनके द्वारा इनमे अभेद-स्थापन के भ्रम की निवृत्ति हो जाती है। विषय के स्पष्टीकरण के लिए कुछ मान्य

विद्वानो के मत प्रस्तुत हैं—डॉ० ओम्प्रकाश गुप्त की दार्शनिक शब्दावली मे मुहावरे वाक्य के सूक्ष्म शरीर हैं और स्थूल शरीर के बिना उनकी अभिव्यक्ति नही हो सकती, परन्तु लोकोक्तिया वाक्य-समाज (भाषा) के प्रामाणिक व्यक्ति हैं जिनका व्यक्तित्व ही उनकी प्रामाणिकता का प्रमाण होता है, जहा-कही और जिस किसी के पास बैठे, उनकी तूती बोलने लगे।[180] बाबू गुलाबराय के मत मे लोकोक्ति का स्वतन्त्र प्रयोग होता है, जबकि मुहावरा परतन्त्र है—'कहावत मे एक पूर्ण सत्य या विचार की पूरी अभिव्यक्ति हो जाती है। वह पूरे वाक्य का अश नही बनता वरन् एक स्वतन्त्र वाक्य होता है। मुहावरा स्वतन्त्र नही होता, वह किसी वाक्य मे रखे जाने का मुहताज रहता है। 'तेते पांव पसारिए, जेती लाबी सौर', 'ठडा लोहा गरम लोहे को काटता है', ये कहावतें हैं, लेकिन 'टेढी खीर', 'पापड बेलना', 'दांतो तले उगली देना', 'दांत खट्टे करना', ये मुहावरे हैं।[181]

श्री ब्रह्म स्वरूप शर्मा 'दिनकर' इस सम्बन्ध मे कहते हैं कि दोनो मे बडा अन्तर है, दोनो को एक समझना भूल है। (अ) 'हाथ पाव मारना'। (ब) 'देनी पडे बुनाई, घटा बताए सूत'। (अ) एक मुहावरा है, अतएव वाक्याश है। (ब) एक लोकोक्ति है और वाक्य है। मुहावरा एक वाक्याश होता है और लोकोक्ति एक पूर्ण वाक्य। मुहावरे का प्रयोग वाक्य मे होता है और लोकोक्ति का स्वतन्त्र रूप से। मुहावरा वाक्य के अर्थ मे चमत्कार उत्पन्न करता है और लोकोक्ति किसी बात के समर्थन के लिए प्रयुक्त होती है।[182] श्री 'दिनकर' के प्रस्तुत विवेचन का अन्तिम अश कि मात्र मुहावरा ही वाक्य मे चमत्कार उत्पन्न करता है तथा लोकोक्ति का प्रयोग किसी बात के समर्थन के लिए होता है, आपत्तिजनक है। वस्तुत दोनो ही भगिमापूर्ण विधान कर वैचित्र्य की सृष्टि करते हैं। लोकोक्ति के द्वारा भी अर्थ मे चमत्कार उत्पन्न होता है। इसके अतिरिक्त जहा तक उसके प्रयोग का प्रश्न है, उन्होने मात्र समर्थन के रूप मे ही लोकोक्ति का प्रयोग स्वीकार किया है, जबकि लोकोक्ति का प्रयोग किसी बात के विरोध आदि के लिए भी होता है। लोकोक्ति के प्रयोग की पोषण, शिक्षण, आलोचन आदि दृष्टियां पूर्व विवेचित हैं। यहा मात्र इतना कहना आवश्यक है कि लोकोक्ति मात्र को प्रयोग की दृष्टि से 'किसी बात के समर्थन के रूप मे' मानना अव्याप्ति दोष से युक्त होगा।

श्री रामस्वरूप त्रिपाठी का मन्तव्य श्री ब्रह्म स्वरूप शर्मा 'दिनकर' के कथन से मिलता-जुलता है। उनके अनुसार—मुहावरा वाक्य का अश होता है। वह स्वतन्त्र रूप से व्यवहार मे नही लिया जा सकता। पर कहावत एक स्वतन्त्र वाक्य होती है और अपना स्वतन्त्र अर्थ रखती है। किसी कथन को पुष्ट करने के लिए उदाहरण के तौर पर अलग से उसका प्रयोग किया जाता है।[183] यहा यह कहना अनुचित न होगा कि इस विवेचन मे नवीनता का अभाव है, पूर्व विवेचित मन्तव्य से इस विवेचन की भिन्नता नही है।

कहावत-कोशकार ने लोकोक्ति एव मुहावरे के पार्थक्य को इस प्रकार स्पष्ट किया है—मुहावरा एक वाक्य-खण्ड अथवा वाक्याश होता है, जबकि कहावत एक सम्पूर्ण तथा स्वतन्त्र सामासिक सूत्र वाक्य। कहावत मे एक पूर्ण सत्य अथवा विचार की अभिव्यक्ति

होती है, पर मुहावरे मे ऐसा नही होता। मुहावरा किसी भाषा मे एक लाक्षणिक प्रयोग होता है। कोई भी मुहावरा जब तक किसी वाक्य मे स्थान नहीं पाता, तब तक वह लगभग निरर्थक होता है। मुहावरे की सबसे बड़ी पहचान है—उसका प्राय. 'ना' प्रत्ययान्त होना। अधिकाश मुहावरे क्रिया की तरह 'ना' प्रत्ययान्त होते हैं और इनसे किसी कार्य या व्यापार का बोध होता है।[184] अपने विवेचन को विस्तार प्रदान करते हुए आगे वे लिखते हैं—कुछ मुहावरेदार वाक्य भी ऐसे होते हैं जिनका प्रयोग कहावतों की तरह होता है। इनके विषय मे जल्द निर्णय कर पाना कठिन होता है कि ये सचमुच कहावतें हैं या मुहावरेदार वाक्य। यथा, 'भले घर में बैन देलउ (मुज० 2) एक मुहावरेदार वाक्य है, जिसमे 'भले घर में बैन देहन।' (भले घर मे बायन देना) एक मुहावरा है, जिसका मानी है— किसी जबरदस्त व्यक्ति से उलझना। गो० तुलसीदास ने भी इसका प्रयोग मुहावरे के रूप मे किया है—'भले भवन अब बायन दीन्हा।' इस मुहावरे वाक्य का प्रयोग अक्सर कहावत के रूप मे भी होता है।[185] वस्तुत. मुहावरा होने के कारण कहावत के रूप मे इसका प्रयोग करना उचित नही होता। कहावत-कोशकार का यह कथन कि मुहावरा लाक्षणिक प्रयोगमात्र है, इसलिए अपूर्ण प्रतीत होता है क्योकि मुहावरो मे व्यग्यात्मकता का भी प्राधान्य होता है। इसके अतिरिक्त लोकोक्तियो मे भी व्यंग्यात्मकता के साथ-साथ निरूढा लक्षणा भी कार्य करती है, अतः मुहावरे को लाक्षणिक प्रयोग मात्र स्वीकार करके इनका भेद-स्थापन नही हो पाता।

डॉ० प्रेम नारायण शुक्ल के दृष्टिकोण के अनुसार मुहावरो की भांति लोकोक्तिया भी भाषा और भाव-सौन्दर्य की सृष्टि करती हैं। इन दोनो मे अन्तर यह है कि मुहावरो मे लाक्षणिक अर्थ लिया जाता है और लोकोक्ति के पीछे कोई घटना होती है, जिसके द्वारा प्रस्तुत विषय का समर्थन किया जाता है।[186] कहना न होगा कि उपत कथन मे डॉ० शुक्ल लोकोक्ति एव मुहावरे के भेद को स्पष्ट करने मे असमर्थ रहे हैं। इसका पुष्ट प्रमाण यह है कि इन्होने मुहावरो की सूची मे—'बालू माहिं तेल नहिं निकसत काहू विधि' तथा 'गगा उलटि फरि फरि जमुना माहैं आणि' जैसे कहावतो के उदाहरणो को भी उसमें सम्मिलित कर दिया है। अतः शुक्ल जी का प्रस्तुत विवेचन इस दृष्टि से अपूर्ण ही कहा जा सकता है।

डॉ० कृष्ण चन्द्र शर्मा द्वारा लोकोक्ति एव मुहावरे के साम्य-वैषम्य-निरूपण मे अधोलिखित तथ्य प्राप्त होते हैं—

वाक् पद्धतियां (मुहावरे)	लोकोक्तिया
(1) व्यजना रूढियां हैं। ये अभिव्यक्ति को बल प्रदान करती हैं। इनका प्रयोगान्तर्गत रूप-परिवर्तन सम्भव है।	चिरकाल के अनुभवो और गहन विचारो की निष्कर्षात्मक अभिव्यक्तिया हैं। ये अपरिवर्तनीय हैं।
(2) खण्ड वाक्य अपूर्ण विचार की वाहिका।	सक्षिप्त वाक्य तथा सम्पूर्ण विचार-वाहिका।

(3) भाव को हृदयगम कराने मे सहायक अप्रस्तुत विधान के समान	तर्क को प्रमाण प्रदान कर अन्तिम व्यवस्था
(4) भाषा की श्रृगार-मजूषा	एव निर्णय की उद्घोषिका
(5) वाणी को चित्र तथा चित्र को सजीवता देने वाली	लोक-मनीषा की सग्राहिका
	सतत उद्धत उद्धरण काव्य बीज-मण्डित
(6) गद्य गरिमा से युक्त	

इनके अतिरिक्त इनमे कुछ साम्य भी है, यथा—सक्षिप्ति, सुस्पष्टता, कुशाग्रता, विदग्धता आदि जो वाक् पद्धतियो और लोकोक्ति मे समान रूप से पाई जाने वाली विशेषताए हैं।[187] डॉ० शर्मा ने अपने इस विवेचन मे लोकोक्ति एव मुहावरे की पृथक्ता के कुछ आधार प्रस्तुत किए हैं, किन्तु यदि इन आधारो को वैज्ञानिक रीति से प्रस्तुत किया जाता, तो उनका यह प्रतिपादन स्थिर एव मान्य हो सकता था, जबकि इस विवेचन मे भी अपूर्णता के दर्शन हो जाते हैं, यथा—अतिम आधार ही लीजिए—मुहावरे जहा गद्य-गरिमा से युक्त होते है, वहा, लोकोक्तियो गद्य एव पद्यबद्ध दोनो ही रूपो मे प्राप्त होती हैं। फिर भी डॉ० शर्मा का यह विवेचन इस दृष्टि से महत्वपूर्ण बन जाता है कि इन्होने लोकोक्ति एव मुहावरे मे परस्पर भेद-स्थापित करने के लिए कुछ नियम निर्धारित करने का प्रयत्न किया है।

डॉ० भोलानाथ तिवारी इन दोनो के परस्पर वैषम्य को उद्घाटित करते हुए कहते हैं—मुहावरा वाक्य में बिल्कुल मिल जाता है, किन्तु लोकोक्ति की अलग सत्ता रहती है। इसका कारण यह है कि अर्थ की दृष्टि से लोकोक्ति अपने आप मे—सूत्र रूप मे ही सही—पूर्ण होती है, किन्तु मुहावरे मे यह बात नही होती। उसे अन्य शब्दो की भी आवश्यकता होती है। साथ ही मुहावरा हमारा अभिव्यक्ति का अग होता है, किन्तु लोकोक्ति उस रूप मे अग नही होती। उससे प्राय किसी बात का समर्थन या खण्डन आदि ही किया जाता है। इन अन्तरो के बावजूद कभी कभी दोनो एक दूसरे के पर्याप्त निकट होते हैं और कभी-कभी तो लोकोक्तियो का क्रिया आदि जोडकर मुहावरे के रूप मे प्रयोग होता है। जैसे 'नौ दिन चले अढाई कोस' करना या 'आंखें कहीं और दिल कहीं और होना' आदि।[188]

अलकार एव शब्दशक्ति के आधार पर श्री अयोध्यासिह उपाध्याय ने दोनो मे पार्थक्य इस प्रकार स्थापित किया है—'सम्पूर्ण कहावतो का अन्तर्भाव लोकोक्ति अलकार मे हो जाता है। किन्तु मुहावरो के पक्ष मे यह नियम लागू नही होता। मुहावरे लक्षणा और व्यजना पर आश्रित हैं, अतएव अलकार मुहावरो मे आ जाते हैं। शब्दालकार भी मुहावरो मे मिलते हैं किन्तु कहावतो मे उनका आधिक्य पाया जाता है। स्वभावोक्ति, ललित तथा गूढोक्ति आदि अलकारो का प्राचुर्य देखने को मिलता है।[189] अलकारो की प्रचुरता लोकोक्तियो के अन्तर्गत प्राप्त होती है, अत लोकोक्तिमात्र को 'लोकोक्ति अलकार' मे अन्तर्भूत करना न्यायोचित नही है। लोकोक्तियों एव मुहावरों मे अलकार-

प्राचुर्य को अस्वीकार नही किया जा सकता। उपाध्याय जी ने मुहावरो को लक्षणा व्यजना पर आश्रित माना है, किन्तु मुहावरो की भाति लोकोक्तियो मे भी उभय शब्दशक्तियो का कार्य-व्यापार अमन्द गति से चलता है।

श्री कन्हैयालाल सहल इस सम्बन्ध मे अपने मत की स्थापना करते हुए लिखते हैं— कहावत और मुहावरे मे एक अन्य प्रमुख अन्तर है। कहावतो को 'अनुभव की दुहिता' कहा गया और अनुभव की समानता दुनिया के प्रत्येक देश मे देखने को मिलेगी। यही कारण है कि एक देश की अनेक कहावतें दूसरे देश की कहावतो से बहुत कुछ मिल जाती हैं। कभी-कभी तो बहुत सी कहावतें परस्पर अनूदित सी जान पडती हैं, किन्तु मुहावरों के सम्बन्ध मे यह नही कहा जा सकता।[190]

उपर्युक्त मन्तव्यो का सार इस प्रकार है—

(क) लोकोक्ति पूर्ण वाक्य का अश न बनकर स्वतन्त्र वाक्य के रूप मे प्रयुक्त होती है, जबकि मुहावरा वाक्याशमात्र होता है तथा स्वतन्त्र रूप से प्रयुक्त न होकर वह परतन्त्र होता है।

(ख) लोकोक्ति का स्वरूप प्रयोग-काल मे प्राय अपरिवर्तनीय होता है, जबकि मुहावरे के लिए ऐसा कुछ नही है।

(ग) लोकोक्ति का प्रयोग खण्डन-मण्डन-शिक्षण आदि के रूप मे होता है, जबकि मुहावरे के प्रयोग का प्रयोजन मात्र वाक्य के अर्थ मे चमत्कार उत्पन्न कर उसे सार्थकता प्रदान करना है। मुहावरे का स्वतन्त्र प्रयोजन लोकोक्ति की भाति नही होता।

(घ) अनेक लोकोक्तियो के अन्तर्गत मुहावरे समाविष्ट होते हैं, जबकि किसी मुहावरे मे लोकोक्तियो का अन्तर्भाव नही होता।

(ङ) कुछ लोकोक्तिया और मुहावरे उभयनिष्ठ होते हैं, अत उनको परस्पर पृथक् करना दुष्कर हो जाता है।

(च) लोकोक्ति मे किसी पूर्ण विचार, सत्य अथवा मानवीय अनुभव की सशक्त अभिव्यक्ति होती है, जबकि मुहावरे मे किसी भाव, दशा, क्रिया, चेष्टा आदि का ही प्रदर्शन अभीष्ट होता है।

(छ) मुहावरे का लाक्षणिक एव ध्वन्यात्मक अर्थ ग्रहण किया जाना आवश्यक होता है, जबकि उपदेशप्रधान, नीति-शिक्षा आदि से सम्बन्धित अभिधा-प्रधान लोकोक्ति के लिए ऐसा कोई प्रतिबन्ध नही है।

(ज) कुछ विद्वानो ने लोकोक्ति का अन्तर्भाव 'लोकोक्ति अलकार' के अन्तर्गत किया है, जबकि मुहावरे को किसी अलकार विशेष मे परिबद्ध नहीं किया गया, यद्यपि लोकोक्तियो एव मुहावरो मे अनेक शब्दालकारो एव अर्थालकारो के सुष्ठु प्रयोग प्राप्त होते हैं।

(झ) लोकोक्तियां अनुभव की दुहिता होने के कारण यत्किंचित् भेद से विभिन्न देशो की विभिन्न भाषाओ मे प्रचलित हैं, अत इनका एक भाषा से दूसरी

भाषा मे सुगमतापूर्वक अनुवाद किया जा सकता है, परन्तु मुहावरो के सम्बन्ध मे यह नही कहा जा सकता।

(ञ) इन दोनो मे एक प्रमुख अन्तर यह भी है कि 'मुहावरा' प्राय 'ना' प्रत्ययान्त होता है और लोकोक्ति मे क्रिया का पूर्ण स्वरूप विद्यमान रहता है।

लोकोक्ति एव मुहावरे के विवेच्य वैषम्य को स्पष्टता एव स्थिरता प्रदान करने लिए लोकोक्ति एव मुहावरे से सम्बन्धित विषय पर शोध-कार्य करने वाले अन्य शोध-र्ताओ के तत्सम्बन्धी प्रतिपादन का अवलोकन आवश्यक है। प्राय. इन समस्त शोध-र्ताओ ने विभिन्न नियमो के आधार पर इनमे परस्पर भेद स्थापित करने का प्रयत्न या है। इन्होंने रूपात्मकता, अर्थपरकता, उपयोगिता, प्रयोगात्मकता तथा शैली आदि दृष्टि से लोकोक्ति एव मुहावरे के परस्पर भेद को स्पष्ट किया है। डॉ० भुवनेश्वर शरी 'बेसुध' ने 'भोजपुरी लोकोक्तिया तथा मुहावरे' नामक शोध-प्रबध मे तीन नियमो आधार पर, डॉ० लक्ष्मीनारायण शर्मा ने 'सूर साहित्य मे प्रयुक्त लोकोक्तियो का यन' मे चार, डॉ० छोटे लाल द्विवेदी ने 'हिन्दी (अवधी) लोकोक्तियो का सास्कृतिक यन' मे पाच, डॉ० रमेश चन्द्र ने 'कथ्य ब्रजभाषा मे प्रचलित कहावतो और मुहावरो अध्ययन' मे दस तथा डॉ० सरोज अग्रवाल ने 'भक्तिकालीन ब्रज साहित्य मे मुहावरे' क अपने शोध-प्रबन्ध मे षोडश नियमो के आधार पर यह भेद स्थापित किया है। सरोज अग्रवाल के ये आधार हैं—रूप, सरचना, प्रत्यय, शब्द-योजना, समावेश रूप , अर्थ, उद्देश्य-विधेय, शब्द-शक्ति, शैली, अलकार, निर्माण, क्षेत्र (देश), अनुवाद, उपयोग तथा नीति तत्त्व। इनमे कुछ आधार ऐसे हैं, जिनका कुछ प्रमुख आधारो मे भाव हो सकता है, यथा—प्रथम आधार रूपात्मकता अथवा सरचना को लिया जा ा है। अनेक प्रारम्भिक आधार इसमे अन्तर्भूत हो सकते हैं, अत कुछ प्रमुख आधारो रा इनका वैषम्य प्रदर्शित सुगमतापूर्वक सम्भव है।

रूपात्मकता अथवा शाब्दिक कलेवर की दृष्टि से लोकोक्ति एव मुहावरे मे मूल-द यह है कि कहावतें मुहावरे की तुलना मे बृहत्तर होती हैं डॉ० ओम्प्रकाश ने शब्दो लोकोक्ति और मुहावरे मे सबसे बड़ा अन्तर तो उनके शाब्दिक कलेवर का है। अग्रेजी हिन्दी मे प्राय सर्वत्र लोकोक्ति को वाक्य और मुहावरा के खण्ड वाक्य अथवा पद गया है।[191] उदाहरणार्थ 'अधिक मिठाई मा कीरा परत हैं' लोकोक्ति मे वाक्य की स्पष्ट है, किन्तु 'नौ दुई ग्यारह होब' या 'मार खाब' मुहावरो मे केवल वाक्य का ही प्रयोग किया गया है। इससे प्रकट है कि मुहावरा एक वाक्याश होता है लोकोक्ति एक सम्पूर्ण स्वतन्त्र या सूत्र वाक्य होती है। मुहावरे की सरचना मे कम दो या अधिक पदो का होना अनिवार्य है। अधिकाशत मुहावरे सज्ञा, सवनाम, , क्रिया विशेषण, कृदन्त, अव्यय आदि पदो के साथ क्रियापद के योग से बनते हैं, कहावतो की सरचना मे अनेक पद होते हैं। वे समास शैली मे पूर्ण वाक्य हैं। अनेक ो मे एक से अधिक वाक्य भी पाए जाते हैं।[192]

लोकोक्ति एव मुहावरे की रूपात्मकता के परिवर्तन के विषय मे हरिऔध जी का कथन है कि कहावतो का रूप निश्चित है और उनके शब्द प्राय निश्चित रूप मे ही बोले जाते हैं।[193] इधर डॉ० सरोज अग्रवाल लिखती हैं कि मुहावरो की शब्द योजना मे किसी भी प्रकार का परिवर्तन अवाछनीय है। शब्द न्यूनाधिक्य या शब्द परिवर्तन से उनका स्वरूप नष्ट हो जाता है। कहावतो के शब्दो के हेरफेर से उनका रूप नष्ट नहीं होता।[194] इसके विपरीत डॉ० रमेश चन्द्र का मत है कि कहावत का वाक्य प्राय ज्यो का त्यो रहता है, अधिक से अधिक कभी-कभी कोई भले ही आगे-पीछे रख दिया जाय या कम-बढती कर दिया जाय, किन्तु सदैव अपने उसी रूप मे बोली जाती हैं, किन्तु मुहावरो मे ऐसी बात नही पाई जाती। वे काल, पुरुष, वचन और व्याकरण के अपेक्षित नियमो के साथ साथ बदलते रहते हैं, यथा—घूरे में पामरी गाड़िबो—के स्थान पर—घूरे में पामरी गड़ि गयो, घूरे मे पामरि गड़ि हिगे, घूरे मे पामरो गाड़ि दूगो। आदि कहावतो मे इस प्रकार का रूप परिवर्तन कर देने से उनकी अर्थ बोधगम्यता नष्ट हो जायगी। इसलिए कहावतो मे रूप परिवर्तन नही होता।[195] परस्पर विरोधी मन्तव्यो को पढकर सन्देह उत्पन्न होता है कि इनमे रूप की दृष्टि से परिवर्तन होता है अथवा नही? वस्तुत उपर्युक्त कथन मे मुहावरों का जो परिवर्तन बताया गया है उससे मुहावरे के मूल स्वरूप को क्षति नही पहुचती, मात्र क्रिया ही अशत परिवर्तित हुई है। जैसे एक मुहावरा है—'पेट में चूहे दौड़ना'। इस मुहावरे को वाक्य में वर्तमानकालिक के रूप मे प्रयोग करते हुए इस प्रकार भी प्रयोग में ला सकते है कि 'पेट म चूहे दौड रहे हैं', किन्तु इससे मूल स्वरूप नष्ट नही होगा, किन्तु यदि दौड़ने की क्रिया के स्थान पर चलने या भागने की क्रिया का भी प्रयोग करेंगे, तो मुहावरा नष्ट हो जाएगा। जहा तक लोकोक्तियो के स्वरूप-परिवर्तन का प्रश्न है निसन्देह सुप्रसिद्ध लोकोक्तियों का प्रयोग करते हुए सामान्यत. उसका यथावत् ही प्रयोग करते हैं यथा—'अक्ल के अधे गाठ के पूरे','अध जल गगरी छलकत जाय','मिया की दौड मस्जिद तक', 'लाए बना रहे बना' आदि लोकोक्तियों का प्रयोग करते हुए वक्ता इनका अपरिवर्तित रूप मे ही प्रयोग करता है, किन्तु जब कोई साहित्यकार अपने साहित्य मे इन्हें स्थान देता है तो छन्द-रचना आदि की दृष्टि स न्यूनाधिक परिवर्तन हो जाता है, किन्तु लोकोक्ति का ढाचा यथवा मूल रूप नष्ट न हो कर वैसा ही बना रहता है। उदाहरणार्थ एक लोकोक्ति है—'विष का वृक्ष भी लगाकर नहीं काटा जाता', जिसका अभिप्राय है—पालन-पोषण के बाद दुष्ट से दुष्ट मनुष्य को भी हानि नहीं पहुचाई जाती। तुलसी ने इस का प्रयोग इस प्रकार किया है—

> पालि के कृपालु व्याल-बाल को न मारिए,
> और काटिए न नाथ! विष हू को रूख लाइकै।[196]

इसी प्रकार का सूर ने अपने शब्दों मे इस प्रकार से व्यक्त किया है—

> "पोसे हो बिरवा लगाइके काटत नाहि बहोरी।[197]"

स्पष्ट है कि इसमें शाब्दिक परिवर्तन होकर भी मूल भाव में कोई अन्तर नहीं आया है।

डॉ० हरदेव बाहरी के शब्दों में मुहावरों में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया जा

सकता। मुहावरो के पदो और उसकी योजना मे किया हुआ किसी प्रकार का परिवर्तन मुहावरो के अभिप्रेत अर्थ को नष्ट कर देता है। जैसे 'काठ की उल्लू', 'बिना घीऊ के फुलका', 'गोबर गणेस हैबो' के स्थान पर 'काठ उल्लू', 'घीऊ के फुलका चुपरिवौ', 'गोबर को गणेस हैबो' प्रयोग करें तो शब्दो न्यूनाधिक्य हो जाएगा। इससे मुहावरो की मुहावरेदानी और अर्थ-सामर्थ्य नष्ट हो जाएगा। किन्तु कहावतो मे पद-क्रम-विपर्यय, पद-परिवर्तन, पद-क्रम-भग एव शब्दो का न्यूनाधिक्य हो सकता है। जैसे, 'नौ दिन चले अढ़ाई कोस' यहा 'अढाई कोस' क्रिया विशेषण 'चले' क्रिया के बाद प्रयुक्त हुआ है। 'नाच कूदे बावरा टूक जोगना खाई' इस कहावत मे 'बावरा' कर्त्ता नाचै कूदै क्रिया के बाद और 'टूक' कर्म 'जोगना' कर्त्ता के पूर्व प्रयुक्त हुआ है। 'हींग की कोथरी मे बासु ई बासु' इस कहावत मे 'होति ए' क्रिया का लोप है।[198]

लोकोक्ति और मुहावरे मे एक प्रमुख अन्तर यह है कि 'मुहावरा' प्राय 'ना' प्रत्ययान्त होता है और लोकोक्ति मे क्रिया का पूर्ण स्वरूप विद्यमान होता है। डॉ० छोटे लाल द्विवेदी लिखते हैं—हिन्दी मे प्राय नान्त पद वाले वाक्य-खण्ड मुहावरे होते है, यथा—'आख आना, आंख उठाना, बात बनाना' आदि। इस आधार पर भी मुहावरो और लोकोक्तियो का अन्तर स्पष्ट है, यद्यपि दो-चार नान्त पद वाली लोकोक्तिया भी मिल जाती हैं, जैसे 'कम खाना, गमखाना'।[199] अन्वेषण से 'ना' प्रत्ययान्त अन्य लोकोक्तिया भी उपलब्ध हो सकती हैं, जैसे—

(क) ऊधो का न लेना न माधो का देना।

(ख) कम खा लेणा पण कम कायदे न रखना।[200]

लोकोक्तियो मे उद्देश्य और विधेय का पूर्ण विधान होता है, इसलिए अर्थ समझने के लिए प्रसग आदि किसी अन्य साधन की आवश्यकता नही होती, किन्तु मुहावरो मे उद्देश्य-विधेय का विधान स्पष्टत नही होता, यही कारण है कि इनका अर्थ समझने के लिए परिस्थिति, प्रसग और प्रयोजन को समझना नितान्त आवश्यक है।[201] किसी भी वाक्य मे अर्थ को स्पष्ट करने के लिए उद्देश्य एव विधेय का होना आवश्यक है। परिवेश के आधार पर कहावत एक वाक्य के रूप मे अपने अर्थ गौरव को प्रस्फुटित करती है जबकि मुहावरा वाक्य मे प्रयुक्त होकर अपनी अर्थ गरिमा को निर्भरित करता है।[202] लोकोक्तियो मे अर्थ का अध्याहार भी विद्यमान होता है। इस विषय मे डॉ०सहल लिखते हैं—स्वल्पाक्षरता श्रेष्ठ कहावत का गुण है। इसलिए जिन कहावतो मे न्यूनतम शब्दो के प्रयोग के द्वारा अधिकतम अर्थ की अभिव्यक्ति होती है, वे कहावतें श्रेष्ठ समझी जाती हैं। अनेक कहावतें ऐसी होती हैं जिनमे अर्थ का अध्याहार करना पडता है। यह अर्थ का अध्याहार राजस्थानी लोकोक्ति मे अनेक रूपो मे उपलब्ध होता है। अध्याहार के विविध रूप—

(क) उद्देश्य (Subject) का अध्याहार

(अ) 'ढल्यो घाटी, हुयो माटी'।

अर्थात् जब भोजन कठ की घाटी को पार कर गया, तो मिट्टी हो गया,

क्योंकि स्वाद तो जिव्हा में ही है। इसमें भोजन का अध्याहार है।

(ख) विधेय (Predicate) का अध्याहार

(अ) 'राजा को दान, प्रजा को स्नान'।

अर्थात् राजा दान करके और प्रजा स्नान करके ही पुण्य लाभ करती है, क्योंकि दान देने की शक्ति सामान्य प्रजा जन मे नही होती।[203]

यहा लोकोक्ति के बाद मे 'पुण्यार्जित करती है' का अनुवर्तन अथवा अध्याहार करने से इसका अर्थ स्पष्ट होता है। इससे स्पष्ट है कि लोकोक्तियों में कहीं उद्देश्य का और कहीं विधेय का अध्याहार रहता है, जबकि मुहावरे मे उद्देश्य-विधान के स्पष्टतः अभाव के कारण उसके प्रसंगादि का ज्ञान आवश्यक है। मुहावरे मे उद्देश्य (कर्त्ता) का तो प्राय अभाव ही रहता है, किन्तु कही-कही कर्त्ता के रूप मे प्रयुक्त होने पर भी उसके प्रयोग के लिए तदनुकूल वाक्य-रचना आदि अपेक्षित होती है, यथा—

(क) तुम अंधे की यष्टि हमारी। बनो न हा गान्धारी। (मैथिलीशरण गुप्त)

(ख) अंधों में काना राजा।[204]

यहा प्रथम मुहावरे 'अंधे की यष्टि' के प्रयोग के लिए 'अंधे' शब्द से पूर्व उद्देश्य 'तुम' शब्द का तथा बाद मे 'न बनो' विधेय का अनुवर्तन आवश्यक है। इसी प्रकार द्वितीय सज्ञार्थक मुहावरे 'अंधों में काना राजा' के साथ वाक्य-रचना का प्रयोग नितांत आवश्यक है, तभी वह भाव-भंगिमा लाने मे समर्थ हो सकता है।

अर्थ प्रकाशन की दृष्टि से कहावतें प्रायः किसी तथ्य या ज्ञान के पोषण, शिक्षण, नीति, आलोचना तथा सूचन को स्पष्ट करती हैं, परन्तु मुहावरों का प्रयोग वाक्य के अर्थ मे चमत्कार उत्पन्न करके उसे साधारण वाक्य से अधिक समृद्ध, उत्कृष्ट, प्रभावशाली, मर्मस्पर्शी एव ओजपूर्ण बनाने के लिए होता है, जैसे—आजु तो राधा चाद की टकु लगि रई ऐ।[205] डॉ० छोटे लाल द्विवेदी भी इस मत का समर्थन करते हुए लिखते हैं—उपयोगिता की दृष्टि से मुहावरे का प्रयोग अर्थ मे चमत्कार उत्पन्न करके उसे साधारण वाक्य से अधिक रोचक, सुन्दर एव प्रभावपूर्ण बना देता है, किन्तु लोकोक्ति का प्रयोग किसी बात के समर्थन, पुष्टीकरण, आलोचना, विरोध, खण्डन जैसे उद्देश्यो के लिए होता है। 'राम नाम जपना, पराया माल अपना' लोकोक्ति ढोगियो के आचरण की आलोचना ही करती है परन्तु 'जले पै नमक छिड़कना' मुहावरा वाक्य मे जमकर उसे रोचक और प्रभावपूर्ण बना देता है।[206]

डॉ० सरोज अग्रवाल ने लोकोक्ति एवं मुहावरे मे भेद-स्थापनार्थ अपने विवेचन मे दो अन्य स्थापनाए की हैं, वे हैं—

(क) मुहावरों का प्रायः निर्माण आवेशपूर्ण मन स्थिति मे होता है, क्योंकि उन का सम्बन्ध मानव-प्रकृति से है; जबकि कहावतो का निर्माण जन मानस के सामान्य अनुभवो से होता है।

(ख) अधिकांशतः कहावतो के मूल मे कोई न कोई कथा छिपी रहती है, किन्तु मुहावरो के मूल मे यह अनिवार्य नही, यद्यपि कुछ मुहावरे प्राचीन कथाओ के आधार

पर बने हैं।[207] इनमें प्रथम का वर्णन अप्रत्यक्षत पूर्व विवेचन मे हो गया है कि प्रयोजन की दृष्टि से मुहावरे अर्थ-चमत्कार उत्पन्न करते हैं, अत इनका प्रयोग सामान्य मन-स्थिति से हट कर होता है, इधर लोकोक्ति सामान्य अनुभवो पर आधारित होने के कारण समर्थन-सूचन आदि उद्देश्यों के लिए प्रयुक्त होती है। डॉ० अग्रवाल की यह स्थापना कि कहावतो मे मूल मे कथा छिपी रहती है, भी महत्वपूर्ण है। गुजराती की एक लोकोक्ति 'अग्रे-अग्रे विप्र जटालो ते जोगी, अन्ने वच्चे नो जे कन्द ते आरोगे आनन्द' के पीछे रोचक कथा है—एक गाव मे एक ब्राह्मण और एक जोगी भीख मागते-मागते एक घर के सामने आए। घरवाली ने दोनो को मिलाकर एक जडमूल के साथ पूरा ईख का डडा दिया और कहा कि आपस मे बाट लो। ईख लेकर दोनो चल दिए, पर बाटते समय दोनो मे झगडा हुआ। ऊपर का पत्ते वाला भाग और जडमूल किसको मिलना चाहिए और बीच वाला रसदार भाग किसको ? कोई निर्णय नही हो पाता था। इतने मे वहा से एक बनिया जा रहा था। उसको दोनो ने बुलाया और उसको पच बनाकर झगडा सुलझाने को कहा। बनिये ने इक्षु दण्ड हाथ मे लिया और कहा—"देखिए, शास्त्र मे लिखा है कि अग्रे-अग्रे विप्र होता है। तब यह ईख का चोटी वाला भाग ब्राह्मण होगा तो ब्राह्मण को देता हूँ। जोगी के जटाए होती हैं, तो नीचे का मूलियो वाला भाग जटिल समझना चाहिए। यह मैं जटा वाले जोगी को देता हू। अब जो बीच वाला कन्दयुक्त भाग है वह मेरे पल्ले आ गया, वह मैं ले जाता हू।[208] इसी प्रकार हमारी कामनाए हमेशा पूरी नही होती। विषयसे सम्बन्धित अग्रेजी की कहावत—There's many a slip twixt the cup and the lip के पीछे एक कथा है—अरब देश मे पुराने जमाने मे गुलामी की प्रथा थी। एक मालिक अपने गुलामो के साथ बडी निर्दयता का व्यवहार करता था। उसने उनको अपने अगूरी बाग मे काम मे लगा दिया। वह जुल्म-जबरदस्ती तथा मारपीट से उनसे काम करवा लेता था। पीडितो के मुह से शापवाणी निकली—"इतनी जोरों जबरदस्ती से तुम यह अगूर बाग हमसे बनवा ले रहे हो, लेकिन इन अगूरो से बनी शराब तुम्हारे मुह मे नही पडेगी।" यह सुनकर मालिक बौखला उठा। आगे चल कर जब पहली भट्टी की शराब तैयार हुई तब उसने उसी गुलाम से पहला प्याला भरवाया और व्यग्य से कहा, 'देखो बच्चू, अब तो मैं शराब पीने वाला हू। तेरा शाप विफल होगा। "तिस पर गुलाम ने कहा, 'साहब, प्याला होठो तक जाने मे काफी अडचनें हैं।" इतने मे वहा ऐसी खबर आ धमकी कि उस बगीचे मे जगली सूअर घुस गए हैं। बगीचा पूरा चौपट न हो इसलिए मालिक ने भाला उठाया और वह फुर्ती से बगीचे की ओर चल पडा। पहला प्याला वैसा ही भरा पडा रहा। सूअर से लडते-लडते वह मारा गया और गुलाम की शापवाणी सही साबित हुई।[209]

लोकोक्ति एव मुहावरे मे पार्थक्य का एक प्रमुख आधार यह भी है कि अनुभव की दुहिता होने के कारण लोकोक्ति की अनुभव जन्य समानता सार्वदेशिक एव सार्वभा-विक होती है, जबकि एक देश या भाषा के मुहावरे दूसरे देश या भाषा मे नहीं मिलते। प्रत्येक देश, जाति, समाज एव भाषा के मुहावरे भिन्न होते हैं तथा वे अपने-अपने क्षेत्र की

सूचना देते हैं, इसलिए विभिन्न भाषाओ के मुहावरो मे पर्याप्त भेद पाया जाता है। डा० सहल का यह कथन सर्वथा उपयुक्त प्रतीत होता है—अनुभव की समानता के कारण एक भाषा की कहावतो का दूसरी भाषा मे अपेक्षतया सरलता से अनुवाद हो सकता है, किन्तु एक भाषा के मुहावरो का दूसरी भाषा मे अनुवाद करना टेढी खीर है।[210] इसकी पुष्टि के लिए कुछ लोकोक्तिया प्रस्तुत हैं—चचल स्त्री से सम्बन्धित लोकोक्तिया देखिए—चचल स्त्री को चाचल्यपूर्ण अस्थिर मनोवृत्ति के परिणामस्वरूप उस पर अविश्वास प्रकट करते हुए उसके चरित्र के प्रति भी सन्देह किया गया है। शेक्सपीयर एक नाटक मे विशद सदर्भ मे लिखते हैं—चचलता। तेरा नाम स्त्री है—Frailty ! thy name is women। एक पजाबी की उक्ति है—"रन्ना चचल हारीआ, चचल कम्म करे। बिन हरन परछविया, राती नदी तरे।' यहा 'रन्ना' सम्बोधन दुश्चरित्र स्त्री के लिए प्रयुक्त हुआ है। बाड्ला लोकोक्ति भी चेतावनी देती है—"नदी, नारी, श्रृगधारी, एइ तिने ना बिश्वास करो।" अर्थात् नदी, बैल और स्त्री के चाचल्य स विश्वास करना बुद्धिमता नही है। एक कन्नड की कहावत है कि चचल स्त्री का पाव अपने बिस्तर पर नहीं ठहरता —'हादर गित्तिग कालु हासिगेय मेले निल्लदु।" स्त्री की अविश्वसनीयता पर विदेशी भाषाओ की कहावतो म भी व्यग्य कसा गया है। अग्रेजी कहावत देखिए—'A whistling woman and crowing hen, neither fit for God, nor for men' यह लोकोक्तिकार के अतिवादी दृष्टिकोण का ही परिणाम है। एक अन्य कहावत म स्त्री को हवा और भाग्य की भाति चचल बताकर परिवर्तनशील कहा है—'Women, wind and fortune are ever changing' जर्मन की एक कहावत के अनुसार स्त्रिया अप्रैल मास की हवा की भाति चचल एव धोखा देने वाली होती हैं—'Weiber sind veranderlich wie April wether' पुर्तगाली भी स्त्रियो का विश्वास करना नही चाहते—'Da mal mother te guardaeda boa nao fies nada' अर्थात् बुरी स्त्री से बचकर रह और अच्छी औरत का विश्वास न करें। डैनिश की एक उक्ति का भाव भी यही है। स्पेनिश की एक लोकोक्ति के अनुसार स्त्री और खरबूजे को ऊपर से पहचानना कठिन है—'Elmelon la muger malos son de concer' डचो न स्त्रियो पर सख्त निगरानी रखने की आवश्यकता पर बल दिया है—'Wepenen, Vrouwen, enboeken behoeven dagelijk sche be handeling' अर्थात् हथियारो, स्त्रियो तथा पुस्तको पर प्रतिदिन नजर रखनी चाहिए। एक भोजपुरी उक्ति है—'अरसजा गइल मंदान फिरे, सोग कहिन कि हेराय गेले।' अर्थात् कोई स्त्री बाहर शौच करने गई, तो लोगो ने सोचा कि भाग गई। स्त्री के विषय मे इतनी आशका, ऐसा सदह इन लोकोक्तियो म है कि सहसा श्रोता या पाठक आश्चर्यचकित हो जाता है। यह स्त्री स्त्री म रहकर कठपुतली बन गई है—आग हमारी कस तुम्हारी, देखो लोगो फेराफेरी (हेराफेरी)।' फ्रेंच की एक लोकोक्ति म भी यही आशय प्रकट किया गया है—'Varium et mutabile est famina' एक और व्यग्य बाण देखिए—'तिरिया चरित न जाने कोय, खसम मारके सती होय।' सस्कृत की भी उक्ति है—'स्त्रियश्चरित्रं

पुरुषस्य भाग्य, देवो न जानाति कुतोः मनुष्यः।' एक इतालियन लोकोक्ति देखिए—'Donna si lagna M doule, donna, S'ammala quando la vuole.' अर्थात् स्त्री इतनी ढोंगी होती है कि जब चाहती है, उसे दुःख होता है, उसे दर्द होता है और वह बीमार भी हो जाती है, चाहे जिस समय वह अपना रंग बदल सकती है। अपना काम निकालने के लिए वह बहुरूपिया बनकर पुरुषों को आसानी से ठग लेती है।[211] कहना अनुचित न होगा स्त्री मात्र के विषय मे उनकी यह धारणा अनिवादी और एकांगी दृष्टि की परिचायक है, मध्ययुगीन कल्पना से सम्पृक्त है। उपर्युक्त वर्णन के द्वारा यहा मात्र यह बताना अभीष्ट था कि अनुभव की समानता होने के कारण एक ही विषय से सबधित लोकोक्तिया विभिन्न भाषाओं मे उपलब्ध हो जाती हैं, किन्तु मुहावरो पर यह नियम लागू नही होता।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि लोकोक्ति और मुहावरे में पर्याप्त साम्य होने पर भी अत्यधिक वैषम्य है और दोनो मे मूलतः स्पष्ट अन्तर है। मात्र कुछ अपवादो को, जो उभयनिष्ठ उक्तियो के अन्तर्गत हैं, छोड दिया जाए तो लोकोक्ति एव मुहावरे स्पष्ट ही भिन्न-भिन्न रूप मे दृष्टिगत होते हैं। इसके अतिरिक्त महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि उभयनिष्ठ उक्तियो का लोकोक्ति एव मुहावरे—दोनो रूपो मे प्रयोग यत्किंचित् परिवर्तन के साथ ही किया जा सकता है, न कि अपने मूल रूप मे। उदाहरणार्थ कुछ मुहावरेदार प्रयोग देखिए—1. 'ऊख छोड़कर आग चिचोरना', 2. 'एक पथ दो काज होना', 3 'एक प्रान दो शरीर होना', 4. 'कुत्ते की पूछ का सीधी न होना' आदि।[212] इनका लोकोक्ति के रूप मे प्रयोग द्रष्टव्य है—

(1) (क) 'सूरदास प्रभु ऊख छाडिकै चतुर चचोरत आग।'

(ख) 'सूरदास प्रभु आक चचोरत, छाड़ि ऊख को मूढ।'[213]

(2) (क) पीपल पूजन मैं चली, निगम बोध के घाट।
पीपल पूजत पी मिले, एक पंथ दो काज।[214]

(ख) स्नान बुझाइ खबर दे आवहु, एक पंथ द्वै काज।[215]

(3) (क) 'एक प्रान वपु दोइ।' (ख) 'एक प्रान द्वै देह' आदि।[216]

(4) (क) 'स्वान पूंछ कोऊ कोटिक लागे, सूधी कहू न करी'।[217]

(ख) 'सूधे होत न स्वान पूंछ ज्यों, पचि-पचि मद मरे।'[218]

इससे स्पष्ट है कि इस प्रकार की उभयनिष्ठ उक्तियो का लोकोक्तियो एव मुहावरो के रूप मे किंचित् परिवर्तन के साथ ही प्रयोग होता है। मुहावरे जहा अपूर्ण वाक्य के रूप मे प्रयुक्त हुए हैं, वहा लोकोक्तियो का प्रयोग स्वतन्त्र एव पूर्ण वाक्य के रूप मे ही हुआ है।

निष्कर्षतः रूपात्मकता, अर्थ-विधान, प्रयोजन और प्रयोग आदि निकषो के आधार पर सिद्ध करने के अनन्तर कहा जा सकता है कि लोकोक्ति एव मुहावरे मे इतना वैषम्य है कि वे एकरूप नही हो सकते। सुविधा की दृष्टि से इन्हें तीन वर्गों मे वर्गीकृत किया जा सकता है—

(क) विशुद्ध लोकोक्ति—जो लोकोक्ति के निकष पर खरी उतरती है।
(ख) विशुद्ध मुहावरे—जो मुहावरे के निकष पर खरे उतरते हैं।
(ग) उभयनिष्ठ उक्तिया—जो अन्वय के आधार पर लोकोक्ति भी हो सकती हैं और मुहावरा भी।

लोकोक्ति एव मुहावरे का क्षेत्र

लोकोक्तियो एव मुहावरो का प्रयोग दो क्षेत्रो मे स्वीकृत है—(क) जनसाधारण, (ख) साहित्य। मानव जीवन की कोई ऐसी गतिविधि नही, जिसे इनके क्षेत्र से बाहर कहा जा सके। इनमे मानव जीवन के सुख दु ख, हर्ष-विषाद, ईर्ष्या क्षोभ, रुचि-अरुचि, प्रेम-विद्रोह, रीति-रिवाज, मनन-चिन्तन, आचार-विचार, आर्थिक, धार्मिक राजनैतिक, सामाजिक, सास्कृतिक जीवन—सभी की अभिव्यजना होती है। यही कारण है कि जहा इन्हें एक ओर लोक ख्याति प्राप्त होती है, वहा साहित्य मे भी पर्याप्त प्रतिष्ठा मिलती है। डॉ० रवीन्द्र भ्रमर के अनुसार इनके व्यवहार से साहित्य को दुहरा लाभ होता है। एक तो उसमे लोकभाषा की मिठास आ जाती है, दूसरे लोकाभिव्यक्ति का सीधा पन।[219] डॉ० गया सिंह के शब्दो मे लोक प्रचलित उक्तियो—लोकोक्तियो, मुहावरो आदि के प्रयोग से अभिजात साहित्य की लोक तात्त्विक विशेषता मे वृद्धि होती है, साथ ही बोलचाल की अभिव्यक्ति विधि से सयोग होने से उसकी अभिव्यजना को लोकप्रियता सहजता और सम्प्रेषणीयता प्राप्त होती है।

लोकोक्तियो एव मुहावरो का क्षेत्र अतिविस्तृत है। लोकख्यात लोकोक्तियो एव मुहावरो को जहा लोक-साहित्य की विधा-विशेष के रूप मे प्रतिष्ठित स्थान मिला है, वहा शिष्ट अथवा अभिजातसाहित्य मे भी इन्हे गौरवपूर्ण पद से अलकृत किया गया है, किन्तु अभिजात-साहित्य मे अभिनन्दित होकर भी लोकोक्तिया एव मुहावरे मूलत लोक साहित्य के ही अग हैं। इनके क्षेत्र का सम्यग्ज्ञान करने के लिए लोक-साहित्य का ज्ञान आवश्यक है।

'लोक साहित्य', 'लोक वार्ता' (Folk lore) का अग है। 'लोकवार्ता' शब्द अग्रेजी के 'फोक लोर' पर्यायवाची पद के रूप मे प्रचलित है। हिन्दी मे इसके प्रयोग का श्रेय प्राय श्रीकृष्ण गुप्त एव डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल को है। डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल ने हिन्दी मे वैष्णवो के वार्ता-सम्बन्धी ग्रन्थो के अनुरूप फोक लोर का पर्याय 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता', 'चौरासी वैष्णव की वार्त्ता' आदि के आधार पर 'लोक-वार्त्ता' स्वीकार किया है। डॉ० सत्येन्द्र भी इस विचार से अपनी सहमति प्रकट करते हैं।[220]

लोक वार्ता विषयक बाटकिन के विचार से द्रष्टव्य हैं—लोकवार्ता बहुत दूर की या कोई बहुत प्राचीन वस्तु नही है, बल्कि वह हम लोगो के बीच का ही एक गतिशील एव जीवित सत्य है। कारण, यहा अतीत वर्तमान से और अशिक्षित समाज, उस समाज से कुछ कहना चाहता है, जो अपने मौलिक मौलिक एव लोकतान्त्रिक सस्कृत के

मूल और प्रारम्भिक रूपों के मान से अपनी कलाओं की जड़ तक पहुँचना चाहता है और जिससे उसकी कलाओ के ऐतिहासिक विकास पर प्रकाश पड़ता है।[221]

लोकवार्ता के सम्बन्ध मे विचार करने वाले पाश्चात्य विचारकों में प्रमुख मेरेट गोम्मे, फ्रेजर, लेविस स्पेंन्स आदि हैं। इन विद्वानों ने लोकवार्ता के क्षेत्र मे स्वरूप पर विचार करते हुए उसके अन्तर्गत उन समस्त अभिव्यक्तियों को स्थान दिया है, जिसमे आदिम मानव के अवशेषों के दर्शन अद्यावधि होते हैं।[222]

आधुनिक युग की एक मान्यता के अनुसार ससार की प्रत्येक जाति ने अपनी यात्रा का आरम्भ आदिम अवस्था या बर्बरावस्था से ही किया है। इनके अनुसार मनुष्य की दैवी उद्भावना या दिव्य महत्तायुक्त आरम्भ के विषय में अविश्वास करना मूर्खता का द्योतक है।[223] इस मत के पक्षधरो का विश्वास है कि आधुनिक मानव की इस चिर यात्रा के उपरान्त उपार्जित सभ्यता के विकास के साथ ही कुछ तद्युगीन अवशेष भी अवशिष्ट हैं, जिसके द्वारा उस आदिम लोक-प्रवृत्ति का अध्ययन भी 'लोक वार्ता' के अध्येता करते हैं, किन्तु उपर्युक्त मन्तव्य आप्त कथन या स्थिर मत नही बन सका है, इसके विपक्ष मे भी अनेक विचारको ने अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। एक प्रतिपक्षीय मान्यता के आधार पर लोक वार्ता जिन अवशेषो का अध्ययन करती है वे (अवशेष) मूल आदिम मनुष्य के हैं, इस बात को निश्चय पूर्वक आज किसी भी शास्त्र अथवा विज्ञान को कहने का अधिकार नही है, क्योकि आरम्भिक आदिम मनुष्य इतना प्रागैतिहासिक है और मनुष्य के अनुमान के भी इतने परे है कि उसके सम्बन्ध मे भी कुछ भी कहना अवैज्ञानिक समझा जाएगा।[224]

प्रत्येक वार्ता मे स्पष्टत. दो बातें मिलती हैं—(1) कोई न कोई आधारभूत तथ्य तथा (2) इसका स्वरूप।[225] तथ्य तो तथ्य है यथा सविता को ही लीजिए—सविता तो सविता ही है, किन्तु उसके स्वरूप-निर्धारणार्थ प्राकृतिक विज्ञान-वेत्ता के लिए जहा वह एक अग्नि पिण्ड है, क्योकि उसको सविता का भौतिक स्वरूप ही अभिप्रेत है, वहा लोकवार्ताकार के लिए सविता इससे भिन्न भी बहुत कुछ है। यह सूर्य पुरुषवत् आचरणों को करता हुआ मोहासक्त भी हो जाता है। सूर्य प्रिय है और उसकी प्रियतमा उषा है। वह उस अपूर्व सुन्दरी तथा अनिंद्य यौवना उषा के सौन्दर्य-जाल मे आबद्ध होकर उसकी आकर्षण शक्ति से आकर्षित होकर उसका पीछा करता है।[227]

लोकवार्ता का प्रतिपादन करते हुए शार्लट सोफिया बर्न ने अत्यन्त वैज्ञानिक ढग से प्रकाश डाला है। उनके आधार पर डॉ० सत्येन्द्र ने भी इस पर विचार प्रकट किए हैं। उनके अनुसार 'लोकवार्ता' शब्द विशद अर्थ रखता है। इसके अन्तर्गत वह समस्त आचार-विचार की सम्पत्ति आ जाती है, जिसमे मानव का परम्परित रूप प्रत्यक्ष हो उठता है और जिसके स्रोत लोक-मानस होते हैं, वे लोक-मानस जिनमे परिमार्जन अथवा संस्कार की चेतना काम नही करती होती। लौकिक धार्मिक विश्वास, धर्म गाथाएं तथा कथाएं, कहावतें, पहेलियाँ आदि सभी लोकवार्ता के अग हैं।[226] स्पष्ट है कि डॉ० सत्येन्द्र ने लोकवार्ता के अन्तर्गत मानव-जीवन के समस्त आचार-विचार, जो लोकोक्तियों आदि

के द्वारा अभिव्यक्त होते हैं, सन्निविष्ट किया है। 'लोकवार्ता' का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल लिखते हैं—लोक मे बसने वाला जन, जन की भूमि और भौतिक जीवन तथा तीसरे स्थान मे उस जन की सस्कृति—इन तीनो क्षेत्रो मे लोक के पूरे ज्ञान का अन्तर्भाव होता है और लोकवार्ता का सम्बन्ध भी उन्हीं के साथ है।[228] 'लोकवार्ता' के अन्तर्गत समस्त विषयो के विभाजन का कार्य अनेक विद्वानो ने किया है इस दृष्टि से सोफिया बर्न का प्रयत्न महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने लोकवार्ता के विषयो को तीन श्रेणियो मे विभाजित किया है। उनके इस वर्गीकरण को डॉ० सत्येन्द्र ने निम्नाकित रूप से प्रस्तुत किया है—

(1) लोक विश्वास एव अन्ध परम्पराए, जो निम्नांकित विषयो से सम्बन्धित हैं—(क) पृथ्वी और आकाश से; (ख) वनस्पति जगत् से; (ग) पशु-जगत् से; (घ) मानव से; (ङ) मनुष्य-निर्मित वस्तुओ से; (च) आत्मा तथा इसके जीवन से; (छ) परा-मानवी व्यक्तियो से; (ज) शकुनो-अपशकुनो, भविष्यवाणियो से; (झ) जादू-टोनो से; (ण) रोगो तथा स्यानो की कला से;

(2) रीति-रिवाज तथा प्रथाए—
(क) सामाजिक एव राजनीतिक; (ख) व्यक्तिगत जीवन के अधिकार, व्यवसाय, धधे तथा उद्योग; (ग) तिथिया, व्रत तथा त्योहार; (घ) खेल कूद तथा मनोरजन।

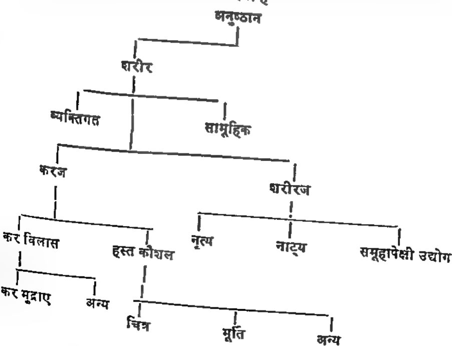
(3) लोक-साहित्य—
(क) कहानिया—(अ) जो सच्ची मानकर कही जाती हैं,
(आ) जो मनोरजन के लिए होती हैं।
(ख) गीत सभी प्रकार के
(ग) कहावतें तथा पहेलिया
(घ) पद्यबद्ध कहावतें तथा स्थानीय कहावतें।[229]

डॉ० सत्येन्द्र ने लोक-साहित्य का स्वरूप निम्न प्रकार से निर्धारित किया है—
(1) लोक वार्ता साहित्य—(क) धर्म गाथा साहित्य
(ख) साधारण लोक वार्ता साहित्य
(2) लोक-साहित्य—(ग) ग्राम साहित्य
(घ) नागरिक साहित्य[230]

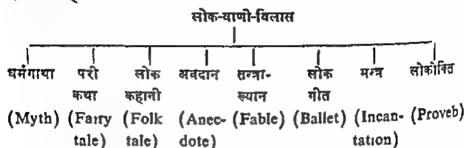
मानव ईश्वर की सबसे सुन्दर सृष्टि है। स्वभावत मानव सामाजिक प्राणी है। उसके सम्बन्ध का पहला रूप कौटुम्बिक है। पुरुष>स्त्री>यौन>आकर्षण पति-पत्नीत्व>यौन>सभोग>सहवास>सहकार>सन्तान जन्म>मातृत्व>पितृत्व>पोषण—रक्षण=कुटुम्ब। इस कुटुम्ब मे प्रत्येक प्रक्रिया और स्थिति के लिए कुछ विशेष आनुष्ठानिक प्रक्रियाए होने लगती हैं। कुटुम्ब-कुटुम्ब मिलते अथवा मानव-समूह मिलकर विविध सामाजिक सम्बन्ध स्थापित करते हैं तो सामाजिक सस्कृति का जन्म होता है।

इस सामूहिक स्थिति की अपनी एक विशेष प्रकार की जीवन-यात्रा होती है, जिसे परि-स्थितियों से, प्रकृति से, अपने ही कौटुम्बिक अवयवों से बाहरी दलों से संघर्ष करना पड़ता है। इन सबके साथ एक लोकवार्ता और अनुष्ठान प्रस्तुत हो जाता है।[231] मानव इस 'लोकवार्ता' का नियन्ता है। समस्त मानव समुदाय के मानवीय स्वरूप को तीन भागो मे बाट सकते हैं। प्रथम लोक-मानस, द्वितीय जन-मानस, तृतीय मुनि-मानस। लोक-मानस वह मानसिक स्थिति है जो आज आदिम मानव की परम्परा मे हैं, उसी का अवशेष है। आज के सभ्य समाज के मानसिक स्वरूप मे इसे सबसे नीचे का धरातल माना जा सकता है। मुनि-मानस वह मानसिक स्थिति है जो मानव-समाज ने सभ्यता के विकास के साथ-साथ उपार्जित की है। यह आज के समाज के मानसिक स्वरूप का सबसे ऊंचा धरातल माना जा सकता है। मध्य की स्थिति जन-मानस की है। लोक-मानस से लोक-वार्ता का जन्म होता है। मुनि-मानस से दर्शन, शास्त्र, विज्ञान और उच्च कलाओं का। जन-मानस साधारण व्यवसायात्मक बुद्धि से ही सम्बन्ध रखता है।[232]

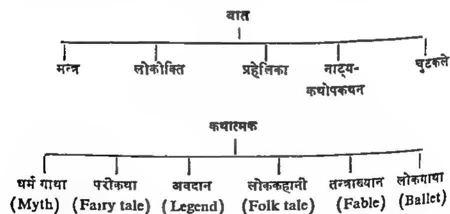
लोकवार्ताकार मानव ने इसका द्विविध निर्माण किया है— (क) लोककला-विलास तथा (ख) लोक वाणी-विलास के रूप मे लोक कला-विलास के अन्तर्गत उत्पादन सम्बन्धी, संग्रह सम्बन्धी आदि वस्तु-पदार्थ आते हैं। डॉ० सत्येन्द्र ने शरीर विलास मे उन आनुष्ठानिक कलाओं का जन्म स्वीकार किया है जो चित्र, मूर्ति, नाट्य आदि से सम्बन्धित होती हैं। वाणी-विलास मे उन अनुष्ठानों का समावेश होता है जिनका सम्बन्ध वाणी-सम्बन्धी अभिव्यक्तियों से होता है। शरीर-विलास की आनुष्ठानिक कलाओं का विभाजन[233] इस प्रकार किया गया है—

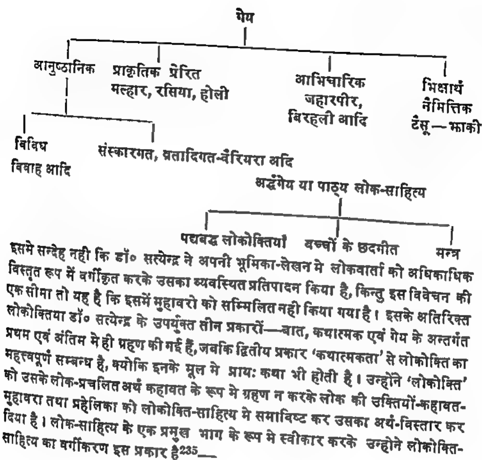


वाणी-विलास भी जीवन से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध है और उत्पादन व उपयोग तथा कुटुम्ब और समाज से निरन्तर लिपटा रहता है। फिर भी इसके कई रूप मिलते हैं, वे इस प्रकार हैं —

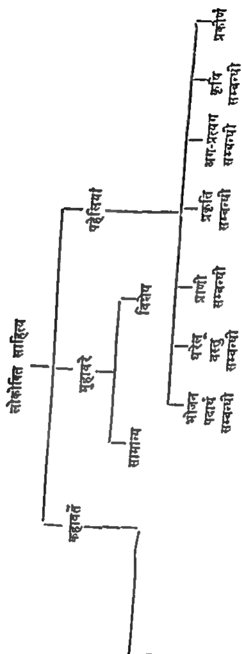


लोक-वाणीविलास के इन रूपो को पहले तीन प्रकार मान सकते हैं—बात, कथात्मक और गेय। कला के आदिम विकास मे विविध अन्य तत्त्वो के समावेश से वाणी विलास मे कई विशिष्ट प्रकारो का जन्म हुआ। कथात्मक वाणी विलास का जन्म अलग-अलग प्रेरणाओ से पृथक् रूप मे हुआ। वार्तालाप तथा कथात्मक प्रकार सामाजिक मूल से सम्बन्धित हैं। गेय' का सम्बन्ध वैयक्तिक एव सामाजिक द्विविध प्रवृत्ति से है। इस प्रवृत्ति के अन्तर्गत 'अर्द्ध गेय' अथवा 'पाठ्य' रूप का विकास भी होता है।[234] इनका वर्गीकरण करते हुए डॉ० सत्येन्द्र ने लोकोक्तियो को 'बात' तथा 'अर्द्ध गेय लोक-साहित्य' के अतर्गत रखा है। उनका विभाजन इस प्रकार है—





इसमे सन्देह नही कि डॉ० सत्येन्द्र ने अपनी भूमिका-लेखन मे लोकवार्ता को अधिकाधिक विस्तृत रूप में वर्गीकृत करके उसका व्यवस्थित प्रतिपादन किया है, किन्तु इस विवेचन की एक सीमा तो यह है कि इसमें मुहावरो को सम्मिलित नही किया गया है। इसके अतिरिक्त लोकोक्तिया डॉ० सत्येन्द्र के उपर्युक्त तीन प्रकारों—बात, कथात्मक एवं गेय के अन्तर्गत प्रथम एवं अंतिम मे ही ग्रहण की गई हैं, जबकि द्वितीय प्रकार 'कथात्मकता' से लोकोक्ति का महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध है, क्योकि इनके मूल मे प्रायः कथा भी होती है। उन्होंने 'लोकोक्ति' को उसके लोक-प्रचलित अर्थ कहावत के रूप मे ग्रहण न करके लोक की उक्तियों-कहावत-मुहावरा तथा प्रहेलिका को लोकोक्ति-साहित्य मे समाविष्ट कर उसका अर्थ-विस्तार कर दिया है। लोक-साहित्य के एक प्रमुख भाग के रूप मे स्वीकार करके उन्होंने लोकोक्ति-साहित्य का वर्गीकरण इस प्रकार है[235]—


लोकोक्ति साहित्य
पहेलियाँ
मुहावरे
कहावतें
विशेष
सामान्य
प्रकीर्ण
कृषि सम्बन्धी
अंग-प्रत्यंग सम्बन्धी
प्रकृति सम्बन्धी
प्राणी सम्बन्धी
घरेलू वस्तु सम्बन्धी
भोजन पदार्थ सम्बन्धी

- सामाजिक
  - जातीय
  - नारी सम्बन्धी
  - धर्म, आचार, रीति सम्बन्धी
  - व्यक्तित्व प्रधान
  - भोजन पदार्थ सम्बन्धी
  - अर्थ राजनीति-मूल
- जीवन-दर्शन सम्बन्धी
  - भाग्यवाद सम्बन्धी
  - कर्म जन्मात सम्बन्धी
  - दार्शनिकता-लोक सत्य सम्बन्धी
- ऐतिहासिक
  - घटना सूचक
  - व्यक्ति जाति प्रधान
  - स्थानीय राजवंश सम्बन्धी
- स्थान विशेष सम्बन्धी
  - शहरी पट्टी गाव सम्बन्धी
  - स्त्री-पुरुष सम्बन्धी
  - नदी-पर्वत सम्बन्धी
- नीति उपदेश प्रधान
- हास्य-व्यंग्य प्रधान
- कृषि-वर्षा सम्बन्धी
- प्रकीर्ण

वस्तुतः लोकोक्ति-साहित्य के अन्तर्गत प्रहेलिका एव मुहावरे आदि का समाहार इसलिए उचित प्रतीत नही होता, क्योंकि इनका स्वतन्त्र अस्तित्व है। डॉ० सत्येन्द्र का यह वर्गीकरण यद्यपि कुछ सीमा तक व्यवस्थित बन पड़ा है, तथापि सर्वथा दोषमुक्त नही कहा जा सकता। इसमे लोकोक्ति अथवा कहावत का वर्गीकरण जितने अच्छे ढंग से किया है, मुहावरे का नही किया। इसके अतिरिक्त कहावत के सामाजिक वर्ग के अन्तर्गत धार्मिक-राजनीतिक कहावतो का समावेश अनुचित प्रतीत होता है। इसी प्रकार ऐतिहासिक कहावतो के समानान्तर पौराणिक या कल्पित कथाओ पर आधारित कहावतो को भी अलग से लिया जा सकता था। जीवन-दर्शन का क्षेत्र भी अत्यन्त विस्तृत है, इसे मात्र दो भागो मे विभक्त करना युक्तिसगत प्रतीत नही होता। इसमे विभिन्न मानवीय स्वभाव के अतिरिक्त लोक-विश्वास—शकुन-अपशकुन आदि से सम्बन्धित लोकोक्तियो को भी समाविष्ट किया जा सकता है तथा नीति-उपदेश-हास्य-व्यग्य प्रधान लोकोक्तियो को भी उपखण्डो मे विभक्त करके विस्तृत एव व्यवस्थित विवेचन हो सकता है। इन सीमाओ के बावजूद डॉ० सत्येन्द्र का यह वर्गीकरण इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण सिद्ध होता है, कि सम्बद्ध विषय पर कार्य करने वाले अध्येताओ ने इससे दिशा-ग्रहण कर अपना मार्ग प्रशस्त किया है।

लोकोक्ति एव मुहावरे का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। लोकोक्ति की भाति मुहावरे का लोक-साहित्य के साथ इसलिए अटूट सम्बन्ध है, क्योंकि इन दोनो के जीवन की प्रायः एक ही राम-कहानी है। इनकी उत्पत्ति एव विकास की अवस्थाएँ भी प्राय. समान हैं। डॉ० लक्ष्मी नारायण शर्मा का यह विचार कि मुहावरे की उत्पत्ति भी मानव-जीवन की किसी घटना या कार्य-कारण परस्परा से होती है[236], उचित प्रतीत होता है। लोकोक्तियो की भाति मुहावरो मे भी प्रायः मानव जीवन के साधारण व्यापारो के चित्र रहते हैं। मुहावरे जीवन की सफलता-असफलता, उन्नति-अवनति, उत्थान-पतन, हार-जीत और मनुष्य के विद्वत्तापूर्ण एव मूर्खतापूर्ण व्यापारो का भी परिचय देते हैं।[237] यही कारण है कि ये महावत् सर्वत्र व्याप्त हो गए और वाणी के शृगार बनकर जहा लोक-साहित्य मे अपना प्रभुत्व स्थापित करने मे सफल हुए हैं, वहा अभिजात-साहित्य मे भी साहित्यकारो द्वारा सम्पूजित हुए हैं। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि मुहावरो और कहावतो का क्षेत्र विस्तृत है। मानव-जीवन मे सम्बन्ध रखने वाला कौन-सा ऐसा विभाग है, जो उनके दायरे के भीतर न आया हो।[238]

लोकोक्तियों और मुहावरों का महत्त्व

लोकोक्तियो एव मुहावरो के क्षेत्र की भाति ही इनके महत्त्व का प्रतिपादन भी मुख्यतः द्विविध रूपो मे सम्भव है—

(क) लोक-वाणी के शृंगार के रूप मे, इनकी लोक-ख्याति के आधार पर।

(ख) काव्य-भाषा के अलंकार के रूप मे, इनकी साहित्यिक उपयोगिता के आधार पर।

लोकोक्तियो एव मुहावरो को लोक-साहित्य के अतिरिक्त अभिजात अथवा शिष्ट साहित्य मे भी सीमातीत श्लाघा प्राप्त हुई है। काव्य-भाषा के अलकरण एव साहित्यिक सौन्दर्य के अभिवर्द्धक होने के कारण अनेक महाकवियो ने इनके आश्रय से जहा सरस्वती को तुष्ट किया, वहा इनके सफल प्रयोग के द्वारा शिष्ट-साहित्य मे जनमानस के अनुकूल लोक-तात्त्विक विशेषता की वृद्धि कर अपनी कृतियो को कालजयी भी बना दिया। डॉ० गया सिंह का यह कथन उपयुक्त ही प्रतीत होता है कि लोकोक्तियो, मुहावरो आदि के प्रयोग से अभिजात-साहित्य की लोकतात्त्विक विशेषता मे वृद्धि होती है, साथ ही बोलचाल की अभिव्यक्ति विधि से सयोग होने से उसकी अभिव्यजना को लोकप्रियता, सहजता और सम्प्रेषणीयता प्राप्त होती है।[239] इसके कारण पर प्रकाश डालते हुए एक विचारक लिखते हैं—लोक-साहित्य मानव जाति का आदिम एव अन्तरग चित्रण होने से शिष्ट साहित्य की तुलना मे अधिक मौलिक और ताजा अनुभूतियो का कोश कहा जा सकता है। सच तो यह है कि लोक-साहित्य ही शिष्ट साहित्य का प्रेरक तथा विधायक उपादान है क्योकि साहित्य के मूल मे निहित चेतना शतश. सामाजिक एव लोकमूला ही होती है। हमारे प्राचीन साहित्य मे वेद के साथ-साथ महाकवि व्यास ने लोकचिन्ता को भी प्रमाण रूप मे मान्यता दी है। लोक-साहित्य एव लोक-वाणी का माधुर्य द्राक्षारस की भाति अपूर्व आस्वाद का हेतु माना जाता रहा है। पान के पुन-पुनः चबाने मे, गन्ने की पोर-पोर के रस मे तथा महाभारत की कथा के श्रवण मे जो मजा, पचतन्त्रकार के अनुसार आता है, वही सरसता और ताजगी लोक-साहित्य के कण-कण मे व्याप्त है। यही कारण है कि कालिदास, जयदेव, विद्यापति, कबीर, सूर, तुलसी, जायसी, केशवदास तथा बिहारी सरीखे रस-सिद्ध कवि भी अपने काव्य मे लोक-तत्त्व की छौक बघार तथा गहरी छाप से (चेतन-अचेतन रूप मे) उन्मुक्त नही रह सके।[240]

लोकोक्तियो एव मुहावरो का महत्त्व लोक-जीवन मे चिर काल से रहा है। डॉ० कृष्ण चन्द्र शर्मा के अनुसार ये लोकानुभव की वे सिद्ध मणिया हैं, जिनको पाकर मनुष्य वाक्शक्ति-सम्पन्न बनता है। ये भाषा की ऐसी थातिया हैं, जिसमे युग-युगान्तर का अनुभव बोलता है और जो हमारे नैतिक, सामाजिक एव धार्मिक जीवन की आधार-शिलाए हैं, जीवन के परिवेश मे जो कुछ समा सकता है, वह यहा प्राप्त है। महर्षि वेदव्यास ने अपने महाग्रन्थ महाभारत के सम्बन्ध मे जैसे कहा है कि 'यदि हास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्।' वही लोक मनीषा की इस ज्ञान-गाठरी के विषय मे भी निर्भीकतापूर्वक कहा जा सकता है। लोक जीवन की इन वाक्-पद्धतियो और लोकोक्तियो मे भी सभी कुछ है।[241] प्राचीन काल से ही लोकोक्तियो एव मुहावरो के महत्त्व से परिचित होकर साहित्यकारो ने इसे अपनाया, किन्तु आज अनेक लोकोक्तिया और मुहावरे अपनी सुदीर्घ परम्परा से सम्पृक्त होने के बावजूद कुछ कारणो से लुप्त हो गए हैं, उन्हें पुन प्रतिष्ठित करने की समस्या जटिल है। प० राम प्रताप त्रिपाठी इस पर खेद प्रकट करते हुए लिखते हैं—लोकोक्तियो के समान मुहावरे निरन्तर चिन्तन का प्रतिफलन, एक बूद मे अनन्त सिन्धु समेटने का प्रयत्न, फलत किसी भाषा के प्राण होते

हैं। इनका उत्स बहुलांशत नगर से दूर उन उजटवासियो मा सहज मन होता है, जिन्होंने कितने ही जेठ मासों की तपन एव भादो की झड़ी अपनी काया पर ही उतार दी है। ये मणिया प्रत्येक जनपद बोली की धूल मे पड़ी मिलती हैं, आवश्यकता उन्हें धो-पोछने की है। इसके लिए निस्वार्थ कर्त्तव्य परायण सकलनकर्ताओ की महती आवश्यकता है। यदि ऐसे अलख जगाने वाले हिन्दी को मिल जाए तो यह कितनी समृद्ध हो जाए—कहने की आवश्यकता नही। हिन्दी क्षेत्र इतने लम्बे काल तक गुलाम रहा कि अपने ही लोग उसे घृणा कराने वाले काम मे सफल रहे। वह वेद, महाभारत, पाणिनि पतजलि, कैयट, भर्तृहरि आदि की सुदीर्घ परम्परा भूल गया, जिन्होंने अपने काल मे लोक की आरती उतारी।[242] लोकोक्तिया एव मुहावरे हमे अपनी परम्परा से जोडते हैं। हमारी राजनैतिक-सामाजिक धार्मिक-सास्कृतिक आदि परम्पराओ के लोकोक्तिया एव मुहावरे सवाहक हैं, परिचायक हैं।

लोकोक्ति और मुहावरे लोक-जीवन मे प्रचलित वे सिक्के हैं, जिनका मूल्य कभी कम नही होता। साहित्य के इन बहुमूल्य रत्नो का प्रयोग जन-सामान्य से लेकर उच्च-कोटि के साहित्य-मर्मज्ञ तक करते हैं। इनमे राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक तथा साहित्यिक आदि परिस्थितियो का प्रेरणादायक, प्रभावोत्पादक, व्यग्यात्मक एव भावात्मक चित्रण अत्यन्त सजीव, रोचक, सारगर्भित, सरल, सक्षिप्त एव उपयोगी भाषा मे करते हुए लोक-जीवन के सार्वभौम सत्य का उदघाटन बड़े ही कौशल के साथ किया जाता है। यही कारण है कि दोनो ही विधाएँ जन मानस का पुष्पहार बनी हुई हैं। अत साहित्य-सागर के इन मुक्त गुच्छो की निरख परख कर आवश्यक मूल्य निर्धारित करने का प्रयास किया गया है।[243]

लोक मे जितना महत्त्व जीवन का है, उससे कही अधिक महत्त्व जीवन म लोकोक्तियो का है। लौकिक मानव इन लोकोक्तियो के प्रभाव स स्वय को अछूता नहीं रख सकता है। इन लोकोक्तियो मे मानव जीवन से सम्बन्धित सामान्य भाव के अतिरिक्त गम्भीर भाव भी पाया जाता है। मानव जीवन इन्ही लोकोक्तियो के संकेत पर चलकर पूर्णता की ओर बढा है। बिना लोकोक्तियो के लोक व्यवहार अधूरा है। तेलुगु की एक कहावत द्वारा बात भली भांति स्पष्ट हो जाती है—'सामेत से निपाट आमेत सेनि इल्ल।' अर्थात् बिना लोकोक्ति के प्रयोग के वार्तालाप उसी घर के समान है, जहा कभी स्वादिष्ट भोजन बनता ही नही।[244] लोकोक्तिया लोक जीवन के साथ सम्बन्धित होने के कारण लोक जीवन को समग्र एव सच्चे रूप मे अकित करती हैं। ये सदैव लोक मानव के अन्तमन पर आच्छादित रहती हैं तथा समय समय पर उनके द्वारा प्रकाशित होती रहती हैं। वे दैनिक जीवन मे अधिक व्याप्त रहती हैं कि इनके लिए लघु प्रयासो की भी आवश्यकता नही होती। प्रसग एव उचित अवसर पर लोकोक्तिया स्वय प्रकट हो जाती हैं। इससे लोकोक्तियो की लोक-जीवन से अभिन्नता प्रकट हो जाती है।[245]

किसी भी देश की परम्परा के अध्ययन के लिए लोकोक्तिया अत्यन्त महत्त्वपूर्ण साधन हैं। डॉ० रमेशचन्द्र का यह कथन उपयुक्त ही है कि इनमे किसी देश की राज-

राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास की प्रचुर सामग्री संचित रहती है। लोकोक्तियां परम्परित होती हैं। अतः इनके माध्यम से हम युगों-युगों के लोक-जीवन का ज्ञान जान सकते हैं। लोकोक्तियां जन-मानस की अत्यन्त प्राचीन धरोहर होती हैं। इनमें सम्बद्ध जन-समुदाय क्षेत्र अथवा राष्ट्र का युगों-युगो का अनुभव सिद्ध ज्ञान भरा रहता है। संसार के प्रत्येक देश एवं जाति में इनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। संसार मे कोई भी ऐसा देश एवं जाति न होगी जिसमें कि कहावतो का प्रचलन न हो।[246] डॉ० शशि शेखर तिवारी के अनुसार लोकोक्तियां परम्परा की संवाहिका और ऐतिहासिक चेतना की प्रतिध्वनि होती हैं। इसलिए उनमें किसी देश या जनपद के राजनीतिक और सांस्कृतिक इतिहास की प्रचुर सामग्री संचित रहती है। लोकोक्ति-साहित्य भी इतिहास के मुख्य अंगो—मुद्रा, अभिलेख और भग्नावशेष की भांति परम्परा के उद्घाटन मे विशेष रूप से सहायक होता है।[247] सांस्कृतिक दृष्टि से इनका बहुत महत्त्व है। लोकोक्तियों मे तो मानो सांस्कृतिक बिम्बों के चौमुख दीपक से बल उठते है और अनुभव-प्रसूत चिन्तन को पुड़ी-सी बांधकर रख दी गई है। सभी देशो के साहित्य का अक्षय अनुभव इनमे अगूर के छिलके के भीतर रस और गूदे की उज्ज्वल-मोतिया कांति से लहलहाते रजकणो का मानिंद प्रतिबिम्बित हो उठता है। लोकवाणी का जितना सहज, अलंकृत, सूत्रबद्ध, लाक्षणिक-व्यंजक चित्र-विचित्र रूप इनमें मिलता है, उतना अन्यत्र कहां ?[248]

लोकोक्तियां मानव-समाज की मनीषा हैं। इनमे अनुभूत ज्ञान की निधि संचित रहती है। डॉ० उदय नारायण तिवारी के अनुसार हम अपनी जाति की परम्परागत विचारधारा का ज्ञान इन्ही के माध्यम से कर सकते हैं। इनके महत्त्व का निरूपण करते हुए डॉ० तिवारी लिखते हैं—"शताब्दियो से किसी जाति की विचारधारा किस ओर प्रवाहित हुई है, यदि इसका दिग्दर्शन करना हो तो उस जाति की लोकोक्तियो का अध्ययन आवश्यक है। काल-क्रम के अनुसार लोकोक्तियों का वर्गीकरण करके राजनीतिक तथा भाषा की इतिहास सम्बन्धी सामग्री प्रचुर परिमाण मे उपलब्ध की जा सकती है।[249] लोकोक्तियो मे जीवन के सत्य को सुन्दर ढग से उद्घाटित किया जाता है। यही कारण है कि मौखिक लोक-साहित्य में लोकोक्ति-साहित्य का बहुत महत्व है।[250] डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल ने लोकोक्तियो को ग्रामीण जनता के नीतिशास्त्र के रूप मे स्वीकार किया है। उनके मत में ये मानवी ज्ञान के घनीभूत रत्न हैं, जिनसे बुद्धि और अनुभव की किरणें फूटने वाली ज्योति प्राप्त होती है। लोकोक्तियां प्रकृति के स्फुलिंगी (रेडियो ऐक्टिव) तत्त्वो की भांति अपनी प्रखर किरणें चारो ओर फैलाती रहती हैं। लोकोक्ति-साहित्य संसार के नीति-साहित्य (विजडम-लिटरेचर) का प्रमुख अंग है।[251] इसका कारण यह है कि लोकोक्तियां मानव-जीवन की गहन अनुभूतियों को व्यक्त करती हैं। इनके द्वारा व्यावहारिक जीवन की विभिन्न समस्याओ पर भी प्रकाश पड़ता है।[252]

लोकोक्तियों मे भाव गरिमा कूट-कूट कर भरी रहती है। अर्थान्तरन्यास, अन्योक्ति, दृष्टांत, सम, विषम तथा दीपक आदि उपदेशमूलक अलकारों का लोकोक्तियों मे बडा ही सुष्ठु प्रयोग मिलता है, जिनसे भावगत सौन्दर्य की प्रस्तुति होती है।

लोकोक्तिया जीवन की पाठशाला के जागरूक शिक्षक हैं। साधारण से साधारण लोकोक्तियो मे जीवनोपयोगी कोई न कोई रत्न अवश्य छिपा मिलेगा।—"जैसे प्राचीन काल के शिलालेखो और सिक्को आदि से इतिहास की कडिया जुडती हैं, वैसे ही कहावतो की मार्फत हम कितनी ही कडिया जोड सकते हैं।"[253] इनमे भावो, विचारो आदि के समाहार की शक्ति विद्यमान होती है। सासारिक व्यवहार पटुता एव सामान्य बुद्धि का विलक्षण निदर्शन इनमे मिलता है। लोकोक्तिया ग्रामीण सस्कृति के प्राचीन गौरव चिह्नो की एलबम हैं। लोकोक्तियो के द्वारा ज्ञान की किरणें चतुर्दिक् फैलकर जन जीवन को आलोक प्रदान करती हैं। डॉ० कन्हैयालाल सहल के विचारानुसार लोकोक्तिया समाज के न्यायालय के अन्तिम निर्णयवत् हैं—"कहावती न्यायालय मे निर्णय होने के बाद उसकी कभी कही अपील नही होती। कहावत ने जो निर्णय दे दिया, वही अन्तिम है।[254] लोकोक्तियो का महात्म्य अद्भुत है। डॉ०चाटुर्ज्या की दृष्टि के आधार पर यह कहावती जगत भी एक विलक्षण लोक है। बडे-बडे ऋषि मुनियो की उक्तियो को भी यदि जनता स्वीकार न करे तो वे भी लोकोक्तियो के गौरवपूर्ण पद पर आसीन नही हो सकती। कहावतो की सचमुच बडी महिमा है, कोई उनकी अवमानना न करे।[255] लोकोक्ति की लोक-स्वीकृति का एक कारण यह भी है कि आप्त वचनो की भाति बिना किसी प्रकार के वाद विवाद के लोकोक्ति को आप्तोपदेश प्रमाण के रूप मे मान्यता प्राप्त हो जाती है। इसी तथ्य को प्रकट करते हुए बाइबिल कोश मे कहा गया है कि व्यावहारिक क्षेत्र मे लोकोक्ति का महत्वपूर्ण स्थान इसलिए है क्योकि न्यायाधीश के सर्वमान्य विश्वासमूलक निर्णयो की भाँति जन-सामान्य लोकोक्ति के आदेश का पालन करता है।[256]

लोकोक्तियो का जितनामहत्व किसी देश,काल, पात्र अर्थात् जाति, जन समुदाय, प्रदेश अथवा सम्पूर्ण राष्ट्र की सभ्यता सस्कृति तथा साहित्य के अध्ययन की दृष्टि से है, उतना ही उसकी भाषा के अध्ययन की दृष्टि से भी है।[257] भाषा के भी मुख्यत दो रूप हैं—सामान्य या वार्तालाप की भाषा तथा साहित्यिक अथवा काव्य भाषा। डॉ० नरसिंह राव की दृष्टि से वार्तालाप मे लोकोक्तियो का दो प्रकार से महत्त्व है—(क) भाषा की शक्ति मे वृद्धि करना, (ख) कथन मे वक्रता और चमत्कार उत्पन्न करना। काव्यात्मक भाषा म जिस प्रकार अलकार-विधान भाषा की शक्ति वृद्धि करता है, उसी प्रकार लोकोक्तियों के द्वारा वार्तालाप मे शक्ति और सुन्दरता का समावेश हो जाता है। भाषा का यह सौन्दर्य दो प्रकार का है—(1) बाह्य सौन्दर्य और (2) आन्तरिक सौन्दय। बाह्य सौन्दर्य में किसी कथन मे शब्द क्रम और विविध उपमानो के रूप मे प्रयुक्त अप्रस्तुत सामग्री की कल्पना के द्वारा दो तत्त्व आ जाते हैं। लोकोक्ति के द्वारा ये दोनो ही तत्व वार्तालाप को प्राप्त हो जाते हैं। भाषा के आन्तरिक सौन्दर्य में उसके अर्थ को पुष्ट आधार, अर्थ परिवर्तन शैली, बौद्धिक रूप से मान्य तर्क और कुछ भावात्मक मधुवेष्टन आते हैं। ये सभी तत्त्व लोकोक्तियो मे विद्यमान होते हैं, अत वार्तालाप की भाषा बाह्यान्तर सौन्दर्य से युक्त होने के लिए लोकोक्तियो का सहारा लेती है।[258] इसमे सन्देह नही लोकोक्तियो के द्वारा कथन में तीव्रता एव प्रभावात्मकता की सृष्टि होती है।

लोकोक्तियो का जितना सम्बन्ध वक्ता से है, उतना ही श्रोता से भी है, अत दोनो प्रभाव ग्रहण करते हैं। वक्ता एव श्रोता का पारस्परिक साधारणीकरण इनके माध्यम स सम्यक्तया हो जाता है। श्री गोपाल प्रसाद व्यास का कथन है—कहावतो के गर्भ मे चमत्कार और इनके कथन मे वक्रता होती है, इसलिए बात जितनी जल्दी कहावतो द्वारा घर उतरती है, उतनी किसी और माध्यम से नही।[259] भाषा के विविध स्तरो क अध्ययनार्थ लोकोक्तिया कामसुधा-स्रोतवत् उपयोगी, फलन महत्वपूर्ण हाती हैं। 'राजस्थानी कहावता' के लेखक की दृष्टि मे भाषा के सौन्दर्य की वृद्धि भी इनके द्वारा ही सम्पन्न होती है। वे हमारे कथन को मार्मिक, मधुर और प्रभावशाली बना देती हैं। वस्तुत भाषा की सुन्दरता और सरसता का प्रधान कारण कहावतें हैं। इनके प्रयोग से लेखो और भाषणो का माधुर्य कितना बढ जाता है, वे कितने सजीव और प्रभावोत्पादक बन जाते हैं, यह सब पर प्रकट है।[260]

साहित्यिक दृष्टि से भी लोकोक्तियो का महत्व कम नही है। काव्य-भाषा अथवा साहित्यिक भाषा के सौन्दर्य की वृद्धि मे लोकोक्तियो का योगदान अप्रतिम है। डा० सन्तराम अनिल इस विषय पर अपने विचार प्रकट करते हुए लिखते हैं—साहित्यिक दृष्टि से भी कहावतें महत्वपूर्ण हैं। उन्हें भाषा का शृ गार कहा जा सकता है और इसी लिए परिनिष्ठित साहित्य मे 'लोकोक्ति' को अलकार के रूप मे प्रतिष्ठा हुई है। कहावतो के द्वारा भाषा मे सजीवता, स्फूर्ति और चोखापन आता है। भाषा-विज्ञान वेत्ता क अध्ययन के लिए भी कहावतें महत्त्वपूर्ण सामग्री का काम करती हैं। समाज शास्त्र और सस्कृति के अध्येता के लिए भी कहावतें अनेक समस्याओ का रहस्योद्घाटन करनी हैं।[261] साहित्यिक भाषा अथवा काव्य-भाषा मे लोकोक्तियो एव मुहावरो के महत्व-प्रतिपादन करने से पूर्व काव्य-भाषा का सक्षिप्त अध्ययन अनुपयुक्त न होगा। सुप्रसिद्ध रूसी विद्वान् प्रे-दिन के मत मे—भाषा विचार का साधन है। भाषा का इस्तेमाल लापरवाही से करने का मतलब है विचारो मे लापरवाही करना।[262] सम्भवत इसी कारण भाषा को पर्याप्त प्रतिष्ठा मिली। काव्य-पुरुष के भाव यदि प्राण हैं तो उस पुरुष-शरीर मे कलात्मकता, आकर्षण-सम्पन्नता, प्रभविष्णुता तथा सम्प्रेषणीयता आदि का समावेश भाषा के द्वारा ही होता है। वस्तुत किसी भी काव्यकृति को काव्यत्व का स्वरूप काव्य-भाषा के माध्यम से ही प्राप्त होता है। प्राच्य एव पाश्चात्य साहित्याचार्यों ने साहित्या-लोचन के सन्दर्भ मे काव्य-भाषा पर पर्याप्त चिन्तन किया है। सस्कृत साहित्य शास्त्र मे शब्द एव अर्थ के सहभाव को काव्य की सज्ञा से अभिहित किया गया है और काव्य के स्वरूप विवेचन के सन्दर्भ मे आनुषगिक रूप से शब्द-तत्त्व अर्थात् काव्य-भाषा का भी प्रतिपादन किया गया है। आत्मवादी और देहवादी दोनों प्रकार के आचार्यों ने स्व-स्व सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए काव्य के बाह्य रूप अर्थात् काव्य-भाषा की भी चर्चा की है। पण्डितराज जगन्नाथ ने रमणीयता को काव्य का सर्वस्व घोषित करते हुए कहा कि रमणीयता अर्थ मे होती है और उसकी अभिव्यक्ति भाषा द्वारा सम्भव है।[263]

पाश्चात्य काव्य शास्त्र मे काव्य भाषा-विषयक विस्तृत विवेचन हुआ है। अरस्तू काव्य-भाषा की भावगत एव शिल्पगत विशिष्टता के विषय मे लिखते हैं—काव्य भाषा मे भाषा-शिल्प का प्रयोग होता है, उसमे ललित कल्पना की क्रीडा होती है। होरेस काव्य-भाषा को सामान्य बोलचाल की भाषा से भिन्न मानते हैं। वे अपने सवादो मे होने वाली अशिष्ट बातचीत के धरातल पर न उतर आए और ऐसा भी न हो कि धरती से बचने के प्रयत्न मे वे मेघो और शून्य मे उछल कर रह जाए। तुच्छ पद्य का उच्चारण त्रासदी की गरिमा के विरुद्ध है।[264] लोगिनुस, दाते, कालरिज तथा डब्ल्यू० पी० केर आदि अनेक विद्वानो ने कलात्मक सौन्दर्य को काव्य-भाषा का प्रमुख गुण माना है। दाते लोक-भाषा को काव्य-भाषा का आधार स्वीकार करके भी उसकी विशिष्टता एव परिष्कृति को महत्त्व प्रदान करते हैं।[265]

काव्य के अभिव्यजना-कौशल का निरूपण द्विविध सभव है—(क) भाषा शास्त्रीय आधार पर तथा (ख) काव्यशास्त्रीय आधार पर। इनम प्रथम दृष्टिकोण के अनुसार काव्य-भाषा का अध्ययन भाषा विज्ञान के सिद्धान्तो के आधार पर किया जाता है। भाषा के विभिन्न तत्त्वो—शब्द रचना, रूप-रचना, सज्ञा, सर्वनाम, क्रियापद आदि के आधार पर काव्य-भाषा का विश्लेषण किया जाता है जबकि द्वितीय आधार पर काव्यशास्त्र के विभिन्न सिद्धान्तो की दृष्टि से काव्य के अभिव्यजना कौशल का दिग्दर्शन कराया जाता है। लोकोक्तियो एव मुहावरो को जहाँ भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन का आधार बनाया जा सकता है, वहा इनमे साहित्यिक सौन्दर्य के स्वाभाविक दर्शन होने के कारण साहित्यशास्त्रीय तत्त्व भी उपलब्ध हो जाते हैं। काव्यशास्त्र के विभिन्न काव्य-तत्त्वो के द्वारा काव्य-सौन्दर्य की अभिव्यक्ति मे लोकोक्तिया एव मुहावरे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

जिस प्रकार काव्य-रचना की प्रक्रिया मे काव्य-भाषा का महत्त्वपूर्ण योगदान है, उसी प्रकार काव्य-भाषा की रचना-प्रक्रिया मे लोकोक्तियों एव मुहावरो का स्तुत्य योगदान है। प्रो० इन्द्रपाल सिंह का विचार है कि किसी भी भाषा की यथार्थ शक्ति का आभास उसमे प्रयुक्त लोकोक्तियो एव मुहावरो के प्रयोग से मिलता है अर्थ-सौन्दर्य, भावाभिव्यजना, अभीष्ट प्रभाव एव वाछित अनुभूति की दृष्टि से पद्य मे जो स्थान अलकारो का है, गद्य मे वही स्थान लोकोक्तियो एव मुहावरो का है।[266] लोकोक्तिया एव मुहावरे काव्य मे प्रयुक्त होकर भाषा को सजीवता, सप्राणता, स्फूर्ति एव शक्ति प्रदान करते हैं। श्री बदरी प्रसाद साकरिया के निम्न कथन से यह बात सिद्ध हो जाती है—(1) व्याकरण—भाषा का अस्थिपजर, (2) शब्द सम्पन्नता—उसका प्राण और (3) लोकोक्तियां और मुहावरे—उसका ओज, सौष्ठव और शारीरिक गठन है। वही भाषा प्राणवान् है जिसमें सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावो को अभिव्यक्त करने वाले शब्दो की प्रचुरता हो और वही ओज वाली भाषा है जिसमे उसकी वाग्व्यवहार एव व्यजना शक्ति की सम्पूर्ण योग्यता हो। प्राणवान् शरीर मे यदि ओज नही है तो वह शरीर अछूती होता है।[267]

लोकोक्तियों का साहित्यिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्व है। इसका एक कारण यह

भी है कि उनमे साहित्य के कलापक्ष की कृत्रिम बोझिलता नही है। अभिव्यक्ति मे सहज स्वाभाविकता और मार्मिकता है। भाषा और बोलियो मे जो प्रभावोत्पादकता का गुण प्राप्त होता है, वह इन्ही के द्वारा प्रदत्त है। इनके बिना वे रसहीन प्रतीत होती हैं।[268]

लोकोक्तियो की भांति मुहावरो का भी इस दृष्टि से अतिशय महत्त्व है। इनके द्वारा भाषा मे चमत्कार उत्पन्न होता है और नवस्फूर्ति आती है। मुहावरे भाषा का प्राण सजीवता की मूर्ति, शक्ति का अक्षय भण्डार, मानवता की कसौटी, सास्कृतिक मान्यताओ का मानक कोश, महान पुरुषो का स्वरूप दर्शन, लोकाचरण का आधार और रसानुभूति के रत्नाकार हैं।[269] भाषा मे मुहावरो के महत्त्व का कारण यह है कि इनके सफल प्रयोग भाषा मे एक ऐसी शक्ति सम्पन्न तीव्रता उत्पन्न कर देते हैं जिससे वह मानव-हृदय को बेधकर उसके अन्तराल मे समा जाती है। सिद्ध लेखक गिने-चुने शब्दो मे ऐसी भाव भरित पक्तिया प्रस्तुत करता है जिसमे शब्द अर्थ-गाम्भीर्य के साथ ही भाषा मे एक विशिष्ट आकर्षण एव लोच प्रतीत होता है।[270] मुहावरो के प्रयोग से प्रयोक्ता अथवा लेखक की भाषा मे प्रौढता एव प्रभावात्मकता आती है। अभिव्यक्ति की सशक्तता भाषा की प्रौढता पर अवलम्बित होती है। तात्पर्य यह है कि मुहावरे भाषिक सजीवता के प्रमाण हैं। सरहिन्दी मुहावरा-कोश मे कहा गया है कि मुहावरे प्रत्येक भाषा की निधि हैं, जिस पर भाषा जीवित रहती है। मुहावरो का कुण्ठित हो जाना तथा जन सामान्य की बोलचाल से उनका उठ जाना भाषा का मरना है। ये जनसाधारण की सम्पत्ति होते हैं। ये व्यक्ति के अनुकूल और प्रतिकूल दोनो होते हैं। ये भाषा की सजीवता के चिह्न हैं। इसलिए विद्वान्, साहित्यिक, रसिक इन्हें अपनाते हैं।[271] काव्य-भाषा मे प्रसगानुकूल विशिष्ट मुहावरो के सफल प्रयोग करने से तात्पर्य यह है कि उसमे माधुर्य, सौन्दर्य, ओज, अर्थ-व्यक्ति आदि गुणों का यथेष्ट विकास हो।[272] मुहावरो के अभाव मे भाषा अमधुर, नीरस एव निष्प्राण बनकर अपने स्थायित्व को नष्ट कर देती है। डॉ० रमेश चन्द्र के अनुसार भाषा यदि सुव्यवस्थित घर है तो मुहावरे उसका प्रकाश हैं। भाषा मे मुहावरो के महत्त्व की चर्चा करते हुए वे लिखते हैं कि मुहावरे भाषा के शृ गार हैं, सुविधा एव सौंदर्य सृष्टि अथवा भाव विकास के लिए उनका सृजन हुआ है। उनकी उपेक्षा उचित नही। वे उस आधार स्तम्भ के समान हैं जिनके अवलम्ब से सुविचार-मन्दिर का निर्माण सुगमता से हो सकता है। मुहावरेदार प्रयोग आमतौर से सुन्दर, सक्षिप्त और ओजपूर्ण होते हैं जिनके कारण किसी कथन का आकर्षण और सौन्दर्य बहुत बढ़ जाता है। मुहावरो के महत्त्व के विषय में कहा जा सकता है कि यदि भाषा अच्छे-अच्छे पदार्थों से सम्पन्न एक सुसज्जित और सुव्यवस्थित घर है, तो मुहावरे उसका प्रकाश हैं। जिस प्रकार अनेक मणियो एव रत्नो से जडा हुआ सुन्दर और आकर्षक घर भी प्रकाश के अभाव मे अन्धकूप लगता है, उसी प्रकार अच्छे से अच्छे भावो से युक्त शुद्ध एव सस्कृतमयी भाषा भी मुहावरेदारी के अभाव मे नीरस एव निष्प्राण लगती है, अतः बोलचाल या साहित्य दोनो भाषाओ के लिए मुहावरो का होना अति आवश्यक है।[273]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर समग्रत. यह कहा जा सकता है कि लोकोक्तियाँ

एव मुहावरे लोक-जीवन तथा साहित्यिक जगत् मे गौरवपूर्ण पद पर आसीन हैं। लोकोक्तियो एव मुहावरो का महत्त्व अनेक दृष्टियो से आका जा सकता है — इनके द्वारा जहा ऐतिहासिक पौराणिक तथ्यों का पता चलता है, वहा सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एव सास्कृतिक आदि तथ्य भी प्राप्त होते हैं। किसी भी राष्ट्र के अतीत का ज्ञान इनके द्वारा हो जाता है। भाषा-विज्ञान के अध्येता को लोकोक्तियो एव मुहावरो के द्वारा भाषा की इतिहास-विषयक रोचक एव महत्त्वपूर्ण सामग्री उपलब्ध हो जाती है। वस्तुत. मुहावरे और लोकोक्तिया लोकोपवन की सर्वाधिक सुगन्धित पुष्पमाल्य एव साहित्यिक रत्नाकर की बहुमूल्य रत्नावलि हैं। कन्नड मे कहा गया है—'गादेय मर्म बल्लरितवनु वेदद मर्म बल्लरितवनु'—जो जाने लोकोक्ति का मर्म सो जाने वेद का मर्म। 'गादे वेदवके समान'—ये वेद के समान हैं। 'वेद सुललादरू गादे सुललागदु'—वेद भी झूठे साबित हो सकते हैं पर लोकोक्ति झूठ नही हो सकती।[274] भारतीय सस्कृति के मूलाधार एव अपौरुषेय माने वाले चतुर्वेदो से भी बढकर इनकी जो प्रशसा की गई है, इसे लोकोक्तियो एव मुहावरे के महत्त्व की पराकाष्ठा ही समझना चाहिए। ●●

संदर्भ-संकेत

1. 'संस्कृत लोकोक्ति संग्रह'—पं० धरणीधर वाजपेयी, पं० बालकृष्ण भट्ट, पुरोवाक्।
2. (क) सूर साहित्य मे प्रयुक्त लोकोक्तियों का अध्ययन—डॉ० लक्ष्मीनारायण शर्मा (अ०शो०प्र०) प्रथम अध्याय(अ)लोकोक्ति-निरूपण, पृ० 1
   (ख) भ्वा० लोकृ 76 दर्शने। लुलोके। लोकृ अलुलोकदिति।—सिद्धान्त कौमुदी—भट्टोजि दीक्षित, पृ० 87 तथा पृ० 348, पृ० 343
   (ग) लोक दीप्तौ चु० उभ० सक० सेट्। लोकयति ते अलूलुकतत्। लोक दर्शने भ्वा० आ० सक० सेट्। लोकते अलोकिष्ट लुलोके। ऋदित् चङि च ह्रस्वः। अलुलोकतत। लोक पु० लोक्यतेऽसौ लोक-घञ्।—वाचस्पत्यम् भाग षष्ठसो, पृ० 4833।
3. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, षोडश भाग, प्रस्तावना, पृ० 1
4. (क) उक्ति स्त्री वच् भावे क्तिन्। कथने।
   "अति संक्षिप्त चिरन्तनोक्तिभिः"—मुक्तावली। "उक्तिप्रत्युक्तिरूपं वाक्यो वाक्यम्"—छा०भा०। "व्याहार उक्तिर्लपितं भाषितं वचनं वचः" इत्यमरः तथा शब्दशक्तेश्च" एकयोक्ता पुष्पवन्तौ दिवाकर निशाकरौ—अमर०
   —वाचस्पत्यम् भाग द्वितीय, पृ० 1050
5. हिन्दी साहित्य कोश (भाग 1)—सम्पा० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० 747
6. (क) जगती लोकोऽविष्टप भुवन जगत्। लोकोऽयं भारतवर्षम्। अमरकोष 2/1/6 अधो भुवन पाताल बलिसद्म रसातलम्। नागलोकोऽथ···। वही 1/8/1 लोकस्तु भुवने जने—वही 3।3।2
   'भुवनार्थक लोकों' शब्दस्य गरुड पुराणे सप्तभेदा उपलभ्यन्ते'—सप्तलोकः प्रकीर्तिताः'—भूलोकं नाभिमध्ये तु भुवर्लोकं हृदूर्ध्वके। स्वर्लोक हृदयेविद्या-त्कण्ठदेशे महस्तथा। जनलोक वक्त्रदेशे तपोलोक ललाटके। सत्य लोकं ब्रह्मरन्ध्रे—इति गरुड पुराणे 115/57-59। भूर्भुवः स्वर्लोकेन यद एव लोका इत्यपि परे। वही—अमरकोष परिशिष्टम्।
   (ख) भूर्भुवः स्वर्महर्जनश्च तप एव च। सत्यलोकश्च सप्तैते लोकास्तु... परिकीर्तिताः॥ इत्याग्निपुराणम्। अपिच—भूर्लोकोऽथ भुवर्लोकः स्वर्लोकः महर्लोक-

मिदमुच्यते । महज्जनस्तप सत्य सप्तलोका प्रकीर्त्तिता ॥

—शब्द कल्पद्रुम —चतुर्थ काण्डम्, पृ० 231

7 हिन्दी शब्द सागर, मूल सपा० श्यामसुन्दर दास, भाग 8, पृ० 4318

8 ऋ० 10/90/14

9 हिन्दी शब्द सागर, मूल सम्पा० श्यामसुन्दरदास, भाग 8, पृ० 4318

10 अशोक का शिलालेख, पृ० 174(14) गिरिनार में।

11 Folklore includes folk are, folk crafts, folk tools, folk custom, folk custume, folk belief, folk medicine, folk recipes, folk music, folk dance, folk games, folk gestures and folk speech, as well as those verbal forms of expression which have been called folk literature but which are better described as verbal art Verbal art, which includes, such forms as folk tales, legends, myths, proverbs, riddles and poetry, has been the primary concern of folklorists from both the humanities and the social sciences since the beginning of folklore as a field of study, and it is with this principal segment of folklore that this article of concerned

European interest in folklore goes back at least to the sixteenth century and the age of exploration, but the modern study of folklore is generally considered to date from the early years of the nineteenth century, when the Grimm brothers began collecing german folktales in the field The Folklore was first introduced in English in 1846 by William John Thoms, who urged that accounts of "manners, customs, observances, superstitions, bellads, proverbs, &c, of the olden time" be recorded in Britain for future study and for comparison with the materials which were being recorded in Germany by the Grimm brothers and other scholars"

—International Ency of Social Science, Vol 5, pp 496-497

12 एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका, भाग 9, पृ० 444

13 हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, षोडश भाग, प्रस्तावना, पृ० 9

14 जनपद त्रैमासिक, अक 1, पृ० 66

15 सम्मेलन त्रैमासिक, लोक सस्कृति विशेषाक, पृ० 65

16 लोके ख्यातिमुपागताऽत्र सकले लोकोक्तिरेषायतो ।
दग्धाना किल वह्निना हितकर सेकोऽपि दस्योदभव ॥
—दे० सस्कृत लोकोक्ति सग्रह—प० च० घ० वाजपेयी, प० बा० कृ० भट्ट, भूमिका।

25 —A proverb is the remnant of the ancient philosophy preserved amidst very many destructions on account of its brevety and fitness of use (Aristotle)

—Jewels five words long that on the stretched forefinger of all time sparkle for ever (Tennyson)

—Proverb may be said to be abridgments of wisdom (Joub•rt) Short sentences drawn from long experience (Cervates)

—Short sentence into which as in rules, the ancient a• have compressed life (John Agricola)

—Well-known and well used dicta framed in a sort of out way from and fashion (Erasmus)

—A proverb is the interpretation of the words of the wise (Bible)

—These Fragments of wisdom, the proverbs in the earliest ages serve as the unwritten laws of morality (Disraeli)

—देखिए राजस्थानी कहावत—डॉ० कन्हैयालाल सहल, पृ० 19

26 देखिए—साहित्य-संदेश—श्याम परमार । जून 1955, अंक 12, भाग 16, पृ० 445

27 A gnomic forms of folk literature a short pregnant Criticism of life, based upon common experience, as (Bible) 'The book of proverbs' quite generally the product of the popular mind it was important as reflecting prevalent attitudes In Gr and Rome it often served as a vehicle of literay and dramatic criticism In longer works, it brought vividness color by compression and boldness of imagery

—Dictionary of World Literary terms—Joseph T Shipley, p 258

28 Proverb tells a truth or some bit of useful wisdom in a short sentence, The Language is generally picturesque and simple Only those saying which many people have used for a long time are called proverbs A man may compose a proveb that becomes a part of everyday speech But most proverbs have been created through common usage

—The World Book Encyclopaedia, V 14, p 740

29 While the formal definition of a proverb is difficult to frame, and every authority attempts to give his own, there is a general agraeement as to the chief characteristics of proverbial sayings

Four qualities are necessary to constitute a proverd, bravity (or, as some prefer to put it, conciseness) sense, piquancy or salt (trench) and popularity

—Encyclopaedia of Religion and Ethics by James Hastings, Vol X, p. 412.

30 विस्तार के लिए देखिए—राजस्थानी कहावतें, पृ० 12-14

31. साहित्य-संदेश,—श्याम परमार जून 1955, अक 12, भाग 16 पृ० 445-446

32. Brevity is the soul of wit (Hamlet)

33 A proverb may be said to be the abridgment of wisdom. (Jonbert)

34 मुहावरा-मीमासा—डॉ० ओम्प्रकाश गुप्त, पृ० 366-67

35. लोक साहित्य की भूमिका—डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय, पृ० 136, 140-41

36 कन्नोजी लोक साहित्य—डॉ० सन्तराम अनिल, पृ० 204 (अवतरणिका)

37. राजस्थानी कहावतें—डॉ० कन्हैयालाल सहल, पृ० 13

38 सू० सा० 3316 पृ० 641, वही, 4522 पृ० 1563, सारा० 970 पृ० 160, न० ग्र० भा० द० स्क० अ० 1, पृ० 194, गो० स्वा० 487 पृ० 187, सू० सा० 4050 पृ० 1418, वही 4222 पृ० 1471, प० सा० 174 पृ० 81, च० दा० 258 पृ० 132 तथा न० ग्र० भा० द० स्क० अ० 14 पृ० 233

39. देखिए—साहित्यिक मुहावरा-लोकोक्ति कोश—हरिवशराय शर्मा, पृ० 56

40 देखिए—वही, पृ० 74

41. सूर साहित्य मे प्रयुक्त लोकोक्तियो का अध्ययन—डॉ० लक्ष्मीनारायण शर्मा, पृ० 16 (अ० शो० प्र०)

42 कन्नौजी लोक-साहित्य—डॉ० सन्तराम अनिल, अवतरणिका, पृ० 204-210

43. राजस्थानी कहावतें—डॉ० कन्हैयालाल सहल, पृ० 14

44. हिन्दी गद्य-साहित्य मे लोकोक्तिया और मुहावरे—डॉ० मदनलाल शर्मा, पृ०11-19 (अ० शो० प्र०)

45 सू० सा० 2521 पृ० 909

46. सूर साहित्य मे प्रयुक्त लोकोक्तियो का अध्ययन—डॉ० लक्ष्मीनारायण शर्मा, पृ०18 (अ० शो० प्र०)

47. राजस्थानी कहावतें—डॉ० क० ल० सहल, पृ० 14

48 दे० हिन्दी गद्य-साहित्य मे लोकोक्तिया और मुहावरे—डॉ० मदनलाल शर्मा, पृ० 120 (अ० शो० प्र०)

49. न० ग्र०, रसमजरी, पृ० 127

50 न० ग्र० भा० द० स्क० अ० 9 पृ० 218

51. दे० क्रमशः सू० सा० 3770 पृ० 1336, वही 4586 पृ० 1586, कु० दा० प्रकीर्ण

399 पृ० 138 तथा वही 23 पृ० 13

52 साहित्यिक मुहावरा लोकोक्ति कोश —हरिवशराय शर्मा, पृ० 290-91

53 वही, पृ० वही

54 तेलुगु और हिन्दी लोकोक्तिया—डॉ० वेंकट रमण राव, पृ० 7

55 To attain the rank of a Proverb, a saying must either spring from the masses or be accepted by the people as true In a Profound sene it must be vox populi

—Encyclopaedia of Religion and Ethics, Hastings Vol X p 412

56 The people voice, the voice of God we call, and what are proverbs but the public's voice ? Coind first, and common made by common choice Then sure they must have weight and truth withal See—Proverbs Maxims & Phrases—Vol I, Robert Christy, p 1 (Preface)

57 साहित्य-सदेश—श्याम परमार। (आगरा, जून 1955, अक 12 भाग 16, पृ० 445)

58 लोक-साहित्य—श्री इन्द्रदेव सिंह पृ० 177

59 अवधी का लोक-साहित्य—डॉ० सरोजनी रोहतगी, पृ० 108

60 कुमाऊ का लोक साहित्य—डॉ० त्रिलोचन पाण्डेय, पृ० 219

61 सूर साहित्य मे प्रयुक्त लोकोक्तियो का अध्ययन—डॉ० लक्ष्मीनारायण शर्मा, पृ० 18 19 (अ० शो० प्र०)

62 साहित्यिक मुहा०-लोको० कोश—हरिवशराय शर्मा पृ० 23

63 साहित्यिक मुहा० लोको० कोश—वही, पृ० 12

64 सू० सा० 2461, पृ० 892

65 वही 2938 पृ० 1033

66 साहित्यिक मुहा० लोको० कोश—हरिवशराय शर्मा, पृ० 131

67 लोक-साहित्य की भूमिका —डॉ० कृष्ण देव उपाध्याय पृ०141

68 There is nothing like absolute truth, all over truth are half truth (Stevenson)

Proverbs are usually but half truths and seldom contain the principle of the action they teach (T T Munger)

—विस्तार के लिए देखिए—राजस्थानी कहावतें—डॉ० कन्हैयालाल सहल पृ० 17 18

69 Proverbs are the literature of reason or the statement of absolute truth, without qualification Like the sacred books of each nation,

they are sanctuary of its Institutions —दे० वही, पृ० 18

70 साहित्य-सन्देश—श्याम परमार, आगरा, जून 55, अक 12, भाग 16, पृ० 446
71 वही, पृ० 447
72 लोक वार्ता पत्रक—कृष्णानन्द गुप्त, स० 3, पृ० 1,
73 पृथिवी पुत्र—डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल, पृ० 111
74 कहावत-कोश, सम्पा० श्री भुवनेश्वर प्रसाद मिश्र एव श्री विक्रमादित्य मिश्र, प्रस्तावना, पृ० (क)
75 राजस्थानी कहावतें—डा० कन्हैयालाल सहल, पृ० 20
76 भाषा विज्ञान कोश, पृ० 581
77 साहित्यक मुहा० लोको० कोश—हरिवशराय शर्मा, पृ० 130
78 वही, पृ० 131
79 वही, पृ० 182
80 वही, पृ० 60
81 वही, पृ० 153
82 नन्द० प्र० गो० ली० पृ० 169
83 कथ्य ब्रजभाषा मे प्रचलित कहावतो और मुहावरो का अध्ययन—डॉ० रमेशचन्द्र, पृ० 33 (अ० शो० प्र०)
84 वही, पृ० 48
85 A proverb sage and a Modern Novelist, an Elizabathen antiquary and a firm of house agents today These have all found a significance in proverb

—दे० सूर साहित्य मे प्रयुक्त लोकोक्तियो का अध्ययन,
—डॉ० लक्ष्मी नारायण शर्मा, पृ० 14 (अ० शो० प्र०)

86 हिन्दी गद्य साहित्य मे लोकोक्तिया और मुहावरे, डॉ० मदनलाल शर्मा (अ० शो० प्र०,) पृ० 126
87 राजस्थानी कहावता, प्रो० नरोत्तमदास स्वामी व मुरलीधर व्यास, भाग 1 अवतरणिका, पृ० 6
88 लोक-साहित्य की भूमिका—डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय, पृ० 143
89 हिन्दी गद्य साहित्य मे लोकोक्तिया एव मुहावरे—डॉ० मदनलाल शर्मा (अ० शो० प्र०) पृ० 128
90 वही, पृ० 128
91 साहि० मुहा० लोको० कोश—हरिवश राय शर्मा, पृ० 227
92 वही, पृ० 299
93 वही, पृ० 203
94 वही, पृ० 12

95 दे० ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन—डॉ० सत्येन्द्र, पूर्वपीठिका, पृ० 493-507
96 तुलसी-काव्य की लोकतात्विक सरचना—डॉ० गया सिह, पृ० 155
97 लौकिक न्यायाञ्जलि सी० जी० ए० जैकब, तृतीयो भाग., पृ० 2 (प्रिफेस)
98 मालवी कहावतें, मेहता, रतन लाल, भाग 1 का प्राक्कथन, पृ० 2
99 राजस्थान कहावतें—डॉ० सहल, पृ० 29-32
100. वही, पृ० 32
101 वही।
102 कहावत कोश—सम्पादक श्री भुवनेश्वर नाथ व श्री विक्रमादित्य मिश्र, प्रस्तावना, पृ० ख-ग
103 दे० हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास, षोडश भाग (सम्पादक राहुल साकृत्यायन, एव डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय)—(अवधी लोक-साहित्य)—श्री सत्यव्रत अवस्थी, पृ० 190
104 दे० वही (छत्तीसगढी लोक-साहित्य), श्री दयाशकर शुक्ल, पृ० 284
105 कहावत कोश—सम्पादक श्री भुवनेश्वरनाथ मिश्र व श्री विक्रमादित्य मिश्र, प्रस्तावना, पृ० ग
106 ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन—डॉ० सत्येन्द्र, पृ० 83-84
107 विस्तार के लिए देखिए—राजस्थानी कहावतें—डॉ० सहल, पृ० 4-9
108 वही
109. दे० कन्नौजी लोक-साहित्य—डॉ० सन्तराम अनिल, पृ० 206-207
110 हिन्दी साहित्य कोश—सम्पादक डॉ० धीरेन्द्र वर्मा पृ० 446
111 ग्राम-साहित्य—प० रामनरेश त्रिपाठी, तृतीय भाग, पृ० 288
112 कुमाऊ का लोक-साहित्य—डॉ० त्रिलोचन पाण्डेय, पृ० 222-223
113 हिन्दी साहित्य-कोश, सम्पा० डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० 754
114 भारतीय साहित्य शास्त्र कोश—डॉ० राजवश सहाय, 'हीरा' पृ० 1107
115. लोकप्रवादानुकृतिर्लोकोक्तिररिति भण्यते।
सहस्व कति चिन्मासान्मीलयित्वा विलोचने ।। कुव० 157
116 सरस्वती कण्ठाभरण, भोज, 2/39
117 अग्निपुराण—6/21
118 अलकार शेखर—केशवमिश्र, 6/22
119 विस्तार के लिए देखिए—भारतीय साहित्यशास्त्र कोश—डॉ० राजवश सहाय 'हीरा', पृ० 1108
120 Aphorism is a short Pithy statement containing truth of genral import—A treasury of English Aphorism - by Logan Pearsal Smith—P. 44
(I) Maxim is a statement of greatest weight

(II) Aphorism only states some broad truth of general bearing, a maxim besides stating the truth, enjoins a rule of conduct as its consequence—Studies in Literature by F V Morley, p 62.

Any saying of pointed character and a sting in its tail is an epigram

—विस्तार के लिए देखिए—राजस्थानी कहावतें—
डॉ० कन्हैयालाल सहल, पृ० 32-34

121 'वाङ ला प्रवाद'—डॉ० सुशील कुमार, पृ० 4
122 'नैतिक जगतेर सत्य हइले ओ व्यावहारिक जगतेर तथ्य नये'—वही
123 राज० कहावतें—डॉ० सहल, पृ० 37
124 Introduction note to Stevenson's book of Proverb, Maxim & Familiar Phrases
125 कुमाऊ का लोक-साहित्य—डॉ० पाण्डेय, पृ० 219-220
126 सस्कृत लोकोक्ति सग्रह—प० धरणीधर वाजपेयी, प० बालकृष्ण भट्ट, भूमिका।
127 हिन्दी मुहावरे—ब्रह्मस्वरूप शर्मा 'दिनकर'
128 गया सुल्लुगात—फारसी कोश, पृ० 445
129 लुगातकिश्वरी, स्तम्भ 2, पृ० 439
130 फरहग आसफिया, जिल्द चहारूम, स्तम्भ 1, पृ० 303
131 उर्दू-हिन्दी शब्दकोष—मुहम्मद मुस्तफा खाँ मद्दाह, पृ० 543
132 कथ्य व्रजभाषा मे प्रचलित कहावतो और मुहावरो का अध्ययन—डॉ० रमेशचद्र, पृ० 74 (अ० शो० प्र०)
133 उर्दू हिन्दी शब्द कोश—मुहम्मद मुस्तफा खा मद्दाह, पृ० 543
134 मुहावरा-मीमासा—डॉ० ओम्प्रकाश गुप्त, पृ० 5-6
135 A Dict of English & Skt by Dr Monier Williams p 357
136 हिन्दी मुहावरे—प० रामदहिन मिश्र, पृ० 6
137 लोक-साहित्य की भूमिका—डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय, पृ० 151-152
138 राजस्थानी कहावतें—डॉ० सहल पृ० 23
139 अच्छी हिन्दी—(क्रियाए और मुहावरे)—रामचन्द्र वर्मा, पृ० 164
140 मुहावरा मीमासा—डॉ० ओम्प्रकाश गुप्त, पृ० 12
141 एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका, भाग 12, पृ० 60
142 Idiom To make a Person's own, to make proper or peculiar, Fr idios one's own proper, peculiar, akin to skr vi asunder
(1) The Language proper or peculiar to a people (a tongue) or to a district, community, or class (a dialect)

(2) The syntactıal, grammatıcal, or structural form Pecuhar to any language, the genius, habit, or cast of alanguage

(3) An Expressıon establıshed ın the usage of a language that ıs pecuhar to ıtself eıther ın grammatıcal construc tıon, or ın *havıng a meanıng which can not be derived* as a whole from the conjomed meanıngs of ıts elements

(4) A form or form of expressıon characterıstic of an author, as Browıng s Idıom,—some tımes extended to ındıviduals and school ın pıınting musıc, etc

(5) Peculıarıty, specıal nature Now Rare

—Webster s Internatıon Dıct Col 3 p 1067

143 डिक्शनरी आफ द इंगलिश लेंगुएज पृ० 613

(1) A mode of expressıon pecuhar to a language Peculıarıty *of expression or Phraseology a phrase stamed by ths usage* of language or of a wrıter with the sıgnificatıon other than ıts grammatıcal or logıcal one

(2) The genıus or peculıar cast of a language

(3) Dıalect peculıar form parıety of language

—Imperıal Dıct , page 555

144 Idıom

145 146 Idıom

(1) The Form of sp•ech pecuhar of proper to a people oj country, *own language or tongue*

(b) In nanower sense , the varıety of a language which ıs pecuhar to a lımıted dıstrıc or class of people dıalect

(2) The *specıfic character property or genıus of any* language the manner of expressıon whıch ıs natural or peculıar to ıt

(3) A Form of expressıon grammatıcal constructıon, phrase etc Pıculıar to a Lınguage

—Murray s New Englısh Dıct Vol V PP 20-21,

147 Idıom

1 (a) The Form of Speech peculıar or proper to a people or country, *own language or tongue*

(b) In narrower sense that variety of a language which is peculiar to a limited distric or class of people, dialect,

2. The specific character, property, or genius of any language, the manner of expression which is natural or peculiar to it

3 A form of expression, gaammatical construction, phrase, etc to a language, a peculiarity of phraseology approved by the usage; of a language, and often having a significant other than its grammatical or logical one

4 Specific form or property, peculiar nature, peculiarity

—The Oxford English Dict , Vol V P 21.

148 Words and Idioms, Dr L P Smith, p 167

149 भाषा-विज्ञान कोश—डॉ० भोलानाथ तिवारी, पृ० 524-525

150 हिन्दी शब्द सागर, भाग 8, मूल सम्पादक श्यामसुन्दरदास, पृ० 3986

151 हिन्दी मुहावरे—ब्रह्मस्वरूप दिनकर, भूमिका

152 अच्छी हिन्दी—क्रियाए और मुहावरे श्री राम चन्द्र वर्मा, पृ० 169-170

153 हिन्दुस्तानी, अप्रैल, 1940, पृ० 168

154 हिन्दी मुहावरे, रामनरेश त्रिपाठी, प्रस्तावना, पृ० 3-4

155 हिन्दी मुहावरे—प० रामदहिन मिश्र, पृ० 5-6

156 कथ्य ब्रजभाषा मे प्रचलित कहावतो और मुहावरो का अध्ययन—डॉ० रमेशचन्द्र (अ० शो० प्र०), पृ० 65

157 वही

158 मुहावरा-मीमासा—डॉ० ओम्प्रकाश गुप्त, पृ० 49

159 हिन्दी मुहावरे—डॉ० प्रतिभा अग्रवाल, पृ० 3

160 वही, पृ० 5

161 हिन्दी शब्द-सागर, आठवा भाग, मूल सम्पा० श्यामसुन्दरदास, पृ० 3986

162 मुकदमा शेरो शायरी—मौलाना हाली, पृ० 142-143

163 अच्छी हिन्दी (क्रियाए और मुहावरे)—रामचन्द्र वर्मा, पृ० 163

164 विस्तार के लिए दे०, *बोलचाल—अयोध्यासिंह उपाध्याय, मुहावरा प्रकरण*—पृ० 115-225

165 दे० हिन्दी गद्य-साहित्य मे लोको० और मुहा०—डॉ० मदनलाल शर्मा, पृ० 168-169 (अ० शो० प्र०)

166 विस्तार के लिए देखिए—भक्तिकालीन ब्रज साहित्य मे मुहावरे—डॉ० सरोज अग्रवाल, पृ० 118-141 (अ०शो०प्र०)

167. वही, पृ० 135

168 वही, पृ० 136

169 हिन्दी शब्दानुशासन—प० किशोरीदास वाजपेयी, पृ० 227
170 गो० स्वा०—पद 23 पृ० 12, सू० सा० 1523 पृ० 573 तथा वही 62 पृ० 21
171 Certain proverbs are proverbial phrases are also so firmly embedded in our colloqual speech that they may perhaps, without stretching the definition too far, be regarded as English Idioms —Words & Idioms, Dr. L. P. Smith, p 176
172 हिन्दी मुहावरे—प० रामदहिन मिश्र, पृ० 7-8
173 कथ्य ब्रजभाषा मे प्रचलित कहावतो और मुहावरो का अध्ययन—डॉ० रमेश चन्द्र पृ० 79 (अ० शो० प्र०)
174 सूरदास—डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा, पृ० 483, चतुर्थ सस्करण
175 भक्तिकालीन ब्रज साहित्य मे मुहावरे—डॉ० सरोज अग्रवाल पृ० 112-113 (अ० शो० प्र०)
176 बिहारी रत्नाकर—159, कृ० र०—सेनापति—41, पद्य—मै० श० गुप्त, पृ० 51
177 सू० सा० 1923 पृ० 718
178 भोजपुरी लोकोक्तिया और मुहावरे—मुक्तेश्वर तिवारी बेसुध, पृ० 60-61
179 भक्तिकालीन ब्रज साहित्य मे मुहावरे—डॉ० सरोज अग्रवाल (अ०शो०प्र०) पृ० 112
180. मुहावरा मीमासा—डॉ० ओम्प्रकाश गुप्त, पृ० 372
181 हिन्दी लोकोक्तिया और मुहावरे—बाबू गुलाबराय, आमुख, पृ० ख
182 हिन्दी मुहावरे—श्री ब्रह्मस्वरूप शर्मा 'दिनकर', विषय परिचय, पृ० 1
183. हिन्दी मुहावरे—श्री राम नरेश त्रिपाठी, भूमिका, पृ० 5
184. कहावत कोश—श्री विक्रमादित्य मिश्र 'माधव' प्रस्तावना, पृ० ङ
185 वही, पृ० च
186 सन्त-साहित्य (भाषापरक अध्ययन)—डॉ० प्रेम नारायण शुक्ल पृ० 368
187. कौरवी वाक्-पद्धति और लोकोक्ति-कोश—डॉ० कृष्ण चन्द्र शर्मा, भूमिका, पृ० 12-13
188 भाषा विज्ञान कोश—डॉ० भोलानाथ तिवारी, पृ० 526
189 बोलचाल—अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध', पृ० 176-177
190 राजस्थानी कहावतें—डॉ० कन्हैयालाल सहल, पृ० 26-27
191. मुहावरा मीमासा—डॉ० ओम्प्रकाश गुप्ता, पृ० 370
192. भक्तिकालीन ब्रज साहित्य मे मुहावरे—डॉ० सरोज अग्रवाल, पृ० 114, (अ० शो० प्र०)
193. बोलचाल—भूमिका—अयोध्यासिह उपाध्याय हरिऔध, पृ० 170

194 भक्तिकालीन ब्रज साहित्य मे मुहावरे, डॉ० सरोज अग्रवाल, पृ० 115, (अ० शो० प्र०)
195 कथ्य ब्रजभाषा मे प्रचलित कहावतो और मुहावरो का अध्ययन—डॉ०रमेशचन्द्र, पृ० 79 (अ० शो० प्र०)
196 साहित्यिक मुहावरा—लोकोक्ति कोश—हरिवशराय शर्मा, पृ०279
197. सू० सा० 4592, पृ० 1584
198 कथ्य ब्रजभाषा मे प्रचलित कहावतो और मुहावरो का अध्ययन—डॉ०रमेशचन्द्र, पृ० 83 (अ०शो०प्र०)
199 हिन्दी (अवधी) लोकोक्तियो का सास्कृतिक अध्ययन—डॉ० छोटे लाल द्विवेदी, पृ० 41 (अ०शो०प्र०)
200 राज० कहावतें—डॉ० क०ला० सहल, पृ० 26
201 भक्तिकालीन ब्रज साहित्य मे मुहावरे—डॉ० सरोज अग्रवाल पृ० 115, (अ० शो० प्र०)
202 कथ्य ब्रजभाषा मे प्रचलित कहावतो और मुहावरो का अध्ययन—डॉ० रमेशचन्द्र पृ० 80 (अ०शो०प्र०)
203 राजस्थानी कहावतें—डॉ० क० ला० सहल, पृ० 81
204 साहित्यिक मुहा० लोको० कोश—हरिवश राय शर्मा, पृ० 10-11
205 कथ्य ब्रजभाषा मे प्रचलित कहावतो और मुहावरो का अध्ययन—डॉ० रमेशचन्द्र, पृ० 81 (अ०शो०प्र०)
206 हिन्दी (अवधी) लोकोक्तियो का सास्कृतिक अध्ययन—डॉ० छोटेलाल द्विवेदी, पृ० 41 (अ०शो०प्र०)
207 भक्तिकालीन ब्रज साहित्य मे मुहावरे—डॉ० सरोज अग्रवाल, पृ० 116 (अ० शो० प्र०)
208 भारतीय कहावत सग्रह—सम्पा० विश्वनाथ दिनकर नरवणे, पृ० 5
209 वही, पृ० 5
210 राजस्थानी कहावतें—डॉ० क० ला० सहल, पृ० 371
211 विस्तार के लिए देखिए—भारतीय कहावत सग्रह, विश्वनाथ दिनकर नरवणे पृ० 82-83
212 हिन्दी मुहावरे—डॉ० प्रतिभा अग्रवाल, पृ० 78, 83 तथा 136
213 सू० सा० 4270, पृ० 1486, 4351, पृ० 1511
214 भारतीय कहावत सग्रह—विश्वनाथ दिनकर नरवणे, पृ० 197
215 सू० सा० 4050 पृ० 1418
216 प० सा० 577 पृ० 256
217 दे० सू० सा० 1798 पृ० 672, 2232 पृ० 814, 2460 पृ०892, 2500 पृ० 903, 2521 पृ० 910, 2526, पृ० 911, 3446 पृ० 1194।

218 वही सू० सा० 4144 पृ० 1447, 4348 पृ० 1510
219 हिन्दी भक्ति-साहित्य मे लोक तत्त्व—डॉ० रवीन्द्र भ्रमर, पृ० 191
220 देखिए—ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन—डॉ० सत्येन्द्र, विषय प्रवेश, पृ० 2
221 Folklore is not something far away and longage, but real and living among us —Here the past has some thing to say to the present and bookless world that likes to read about itself, concerning our basic, oral and democratic culture as the root of arts and as a sidelight on history

—American Folklore (Pocket Book) p 15
द्रष्टव्य मगही लोक साहित्य—डॉ० सम्पत्ति आर्याणी, पृ० 2

222 (A) Folk-lore may be said to include all the culture of people, which has not been worked in to the difficial religion and history, but which is and always been of self growth

—Psychology and Folklore by R R Maret, p 76

(B) Modern researches in to the early history of man, conducted on different lines have converged with almost irresisible Force on the conclusion, that all civilized races have at some period or other emerged from a state of savagery resembling more or less closely the state in which many backward races have continued to the present time; and that long after the majority of man in a community have ceased to think and act like savages, not a few traces of the old ruder modes of life and thought survive in the habits and institution of the people Such survivals are included under the head of folklore which, in the broadest sense of the word, may de said to embrace the whole body of a people traditionary believes and customs, so far as these appear to be due to the collective action of 'the multitude' and can not be traced to the individual of great men

—Frazer man and God and Immortality, p 42

(C) Myth arose in savage condition prevalant in remote ages among the whole human race, it remains comparatively unchanged among the modern rude tribes who have de-

partted least from these primitive conditions, whole even higher and later grades of civilization, partly by retaining its actul principles, parly by carrying on its imperfect results in the form of ancestral tradition, have continued it not merely in toleration but in honour

—Tylore, Primitive Culture, Vol 1, p 283

Quoted in poetry and Myth Prescott, p 13

(D) Folkore means the study of survivals of early custom, belief, narrative and art

—An Introduction to Mytholoy by Lewis Spence, p 11

विस्तार के लिए दे० भारतीय साहित्य आगरा वि० वि० हिन्दी विद्यापीठ का प्रमुख पत्र, अक्तूबर, 1956, वर्ष 1 अंक 4 पृष्ठ 1-3।

223 Indeed the notion that man began with pure moral and religious ideas and a sensible language but gradully became possessed by a licentious imagination and so formed untrue and unlovely conceptions, has been quite given up, and we see instead that he began with the crudest daeams and Fancies, which were by a long, natural and (in general) healthy growth gradually elevated and refined

—Poetry and myth by Presscot p 101

द्रष्टव्य, वही पृ—2

224 द्रष्टव्य वही

225 Every tradition...Myth and story contains two perfectly independent elements—the fact upon which it is founded and the interpretation of the Fact which is founders have attempted

—Gomm Folklore as an Historical Science, p 10

It need to be said again that the art business has two sides to it First the subject, and second the way in which the subject is treated

—Famous Artists their models by Thomas Craven, p x

द्रष्टव्य, वही, पृष्ठ—3

226 मर्यो न योषामभ्येति पश्चात्। ऋ० 1/115/2

227 ब्रज लोक-साहित्य का अध्ययन, डॉ० सत्येन्द्र, पृ० 2

228 पृथिवीपुत्र—डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ० 85 (लोकवार्ताशास्त्र)
229 द्र० ब्रजलोक-साहित्य का अध्ययन—डॉ० सत्येन्द्र, पृ० 5
230 वही, पृ० 8
231 लोक कला मूल्य और सदर्भ—डॉ० महेन्द्र भानावत, भूमिका, डॉ० सत्येन्द्र, पृ० 3
332 भारतीय साहित्य—आगरा वि० वि० हिन्दी विद्यापीठ का प्रमुखपत्र, अक्टूबर 1956, वर्ष 1, अक 4, पृ० 3
233 लोक कला मूल्य और सन्दर्भ—डॉ० महेन्द्र भानावत, भूमिका, पृ० 3 4
234 वही।
235 वही।
236 सूर साहित्य मे प्रयुक्त लोकोक्तियो का अध्ययन—डॉ० लक्ष्मीनारायण शर्मा, पृ० 38 (अ०शो० प्र०)
237 कथ्य ब्रजभाषा मे प्रचलित कहावतो और मुहावरो का अध्ययन—डॉ० रमेश चन्द्र पृ० 66 (अ०शो०प्र०)
238 राजस्थानी कहावता—प्रो० न० दा० स्वामी, प० मु० ध० व्यास, अवतरणिका, पृ० 3
239 तुलसी-काव्य की लोक-तात्त्विक सरचना—डॉ० गया सिह, पृ० 155
240 हरियाणा लोक-साहित्य सास्कृतिक सन्दर्भ—डॉ० भीमसिंह मलिक, पृ० 76-77
241 कौरवी वाक् पद्धति और लोकोक्ति-कोश—डॉ० कृष्ण चन्द्र शर्मा, पृ० 5-6
242 सम्मेलन पत्रिका—स० प० रामप्रताप त्रिपाठी—भाग 59, सख्या 4, आश्विन-मार्गशीर्ष, त्रैमासिक (विविधा), पूर्वी ब्रज की वाक् पद्धतिया, पृ० 91
243 हिन्दी गद्य-साहित्य मे लोकोक्तिया और मुहावरे—डॉ० मदनलाल शर्मा पृ० अ, दो शब्द (अ० शो०प्र०)
244 सूर साहित्य मे प्रयुक्त लोकोक्तियो का अध्ययन—डॉ० लक्ष्मी नारायण शर्मा पृ० 46 (अ०शो०प्र०)
245 हिन्दी (अवधी) लोकोक्तियो का सास्कृतिक अध्ययन—डॉ० छोटेलाल द्विवेदी पृ० 43 (अ०शो०प्र०)
246 कथ्य ब्रजभाषा मे प्रचलित मुहावरो और कहावतो का अध्ययन—डॉ० रमेशचन्द्र पृ० 51, 53 (अ०शो०प्र०)
247 भोजपुरी लोकोक्तियो का अध्ययन—डा० शशि शेखर तिवारी, पृ० 74 (अ०शो०प्र०)
248 हरियाणा लोक-साहित्य . सास्कृतिक सन्दर्भ, डॉ० भीमसिंह मलिक पृ० 85
249 हिन्दुस्तानी स० रामचन्द्र टण्डन (हिन्दुस्तानी एकेडेमी, सयुक्त प्रान्त, इलाहाबाद, अक 2, भाग 9—'भोजपुरी लोकोक्तिया'—डॉ० उदयनारायण तिवारी), पृ० 19
250 लोकवार्ता पत्रक, लेखक श्री कृष्णानन्द गुप्त, सं० 3, पृ० 1

251. पृथिवीपुत्र—डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल, पृ० 111
252 शोध-पत्रिका—मालवी कहावतें—सम्पा० रत्नलाल मेहता। साहित्य शोध सस्थान, राजस्थान वि०वि०, भाग 3, अक 3, चैत्र, पृ० 151,
253 कहावतो की कहानिया —डॉ० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या, पृ० 5, भूमिका
254. राजस्थानी कहावतें —डॉ० क० ला० सहल, पृ० 2
255 लोकवार्ता पत्रक,—कृष्णानन्द गुप्त स० 3, पृ० 1
256 Dictionary of Bible pp. 767-768.
257. कहावत-कोश —श्री विक्रमादित्य मिश्र, प्रस्तावना, (6)
258 तेलुगु और हिन्दी लोकोक्तियो का तुलनात्मक एव भाषा वैज्ञानिक अध्ययन—डॉ०के०वी०वी०एल० नरसिंह राव, पृ० 6 (अ०शो०प्र०)
259 ब्रजभारती, "कहावतो द्वारा मानव जीवन की अभिव्यक्ति।" वर्ष 3, अक 4, पृ० 3
260 राजस्थानी कहावता—प्रो० न० दा० स्वामी, प० मु० ब० व्यास प्र० भा० अवतरणिका, पृ० 45
261 कन्नौजी लोक-साहित्य—डॉ० सन्तराम अनिल, अवतरणिका, पृ० 204-210
262 लेखक और कला, कोन्स तोन्तिन प्रे-दिन, अनु० अमृतराय, पृ० 49 दे० आलोचना, अक्टू० 1954,
263. रमणीयार्थ प्रतिपादक · शब्द : काव्यम्—रसगगाधर 1/1
264 होरेस की काव्यकला, सम्पा० डॉ० महेन्द्र चतुर्वेदी, पृ० 12
265 R A Scott James : Making of Literature, p. 104.
266. तेलुगु और हिन्दी लोकोक्तियो का तुलनात्मक एव भाषा वैज्ञानिक अध्ययन—के० वी० वी० एल० नरसिंहराव, पृ० 6 (अ० शो० प्र०)
267 'राजस्थान भारती', शीर्षक 'राजस्थानी हिन्दी शब्दकोश'—'खोट' शब्द और उसके मुहावरे'—स० बदरीप्रसाद साकरिया, जुलाई, 1956, अक 3-4, पृ० 152
268. हडौती कहावतें—डॉ० नाथूलाल पाठक, भूमिका
269. हिन्दी गद्य साहित्य मे लोकोक्तियां और मुहावरे—डॉ० मदन लाल शर्मा, पृ० 172-173 (अ० शो० प्र०),
270. सन्त साहित्य-(भाषापरक अध्ययन)-डॉ० प्रेम नारायण शुक्ल, पृ० 368
271 हिन्दी मुहावरा कोश—सरहिन्दी, प्रस्तावना
272. हिन्दी मुहावरे—प० रामदहिन मिश्र, भूमिका, पृ० 15
273 कथ्य ब्रजभाषा मे प्रचलित कहावतो और मुहावरो का अध्ययन —डॉ० रमेश चन्द्र पृ० 74 (अ० शो० प्र०)
274 भारतीय कहावत सग्रह—सम्पा० विश्वनाथ दिनकर नरवणे, भूमिका, पृ० 3-4

●●

संदर्भ-संकेत

1. 'संस्कृत लोकोक्ति संग्रह'—पं० धरणीधर वाजपेयी, पं० बालकृष्ण भट्ट, पुरोवाक् ।
2. (क) सूर साहित्य मे प्रयुक्त लोकोक्तियों का अध्ययन—डॉ० लक्ष्मीनारायण शर्मा (अ० शो० प्र०) प्रथम अध्याय (अ) लोकोक्ति-निरूपण, पृ० 1
   (ख) भ्वा० लोकृ 76 दर्शने । लुलोके । लोकृ अलुलोकदिति ।—सिद्धान्त कौमुदी —भट्टोजि दीक्षित, पृ० 87 तथा पृ० 348, पृ० 343
   (ग) लोक दीप्तौ चु० उभ० सक० सेट् । लोकयति ते अलूलुकत् (त) । लोक दर्शने भ्वा० आ० सक० सेट् । लोकते अलोकिष्ट लुलोके । ऋदित् चङि च ह्रस्वः । अलुलोकत् (त) । लोक पु० लोक्यतेऽसौ लोक-घञ् ।—वाचस्पत्यम् भाग षष्ठ, पृ० 4833 ।
3. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, षोडश भाग, प्रस्तावना, पृ० 1
4. (क) उक्ति स्त्री वच् भावे क्तिन् । कथने ।
   "अति सक्षिप्त चिरन्तनोक्तिभिः"—मुक्तावली । "उक्तिप्रत्युक्तिरूपं वाक्ो वाक्यम्"—छा०भा० । "व्याहार उक्तिर्लपितं भाषितं वचनं वचः" इत्यमरः तथा शब्दशक्तौ च" एकयोक्ता पुष्पवन्तौ दिवाकरनिशाकरौ—अमर०
   —वाचस्पत्यम् भाग द्वितीय, पृ० 1050
5. हिन्दी साहित्य कोश (भाग 1)—सम्पा० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० 747
6. (क) जगती लोकोविष्टपं भुवनं जगत् । लोकोऽयं भारतवर्षम् । अमरकोष 2/1/6
   अधो भुवनपातालं बलिसद्म रसातलम् । नागलोकोऽथ··· । वही 1/8/1
   लोकस्तु भुवने जने—वही 3।3।2
   'भुवनार्थक लोक शब्दस्य गरुड पुराणे सप्तभेदा उक्तास्तथाहि'—सप्तलोकाः प्रकीर्तिताः'—भूर्लोकं नाभिमध्ये तु भुवर्लोकं तदूर्ध्वके । स्वर्लोकं हृदये विद्यात्कण्ठदेशे महस्तथा । जनलोकं वक्त्रदेशे तपोलोकं ललाटके । सत्य लोकं ब्रह्मरन्ध्रे—इति गरुड पुराणे 115/57-59 । भूर्भुवः स्वर्भेदेन त्रय एव लोका इत्यपि परे । वही—अमरकोष परिशिष्टम् ।
   (ख) भूर्भुवः स्वर्महश्चैव जनश्च तप एव च । सत्यलोकश्च सप्तैते लोकास्तु··· परिकीर्तिता । इत्यग्निपुराणम् । अपि च—भूर्लोको भुवः स्वर्लोकस्त्रैलोक-

मिदमुच्यते । महज्जंनस्तप सत्यः सप्तलोकाः प्रकीर्तिता. ॥

—शब्द कल्पद्रुमः—चतुर्थ काण्डम्, पृ० 231

7. हिन्दी शब्द सागर, मूल सपा० श्यामसुन्दर दास, भाग 8, पृ० 4318
8. ऋ० 10/90/14
9 हिन्दी शब्द सागर, मूल सम्पा० श्यामसुन्दरदास, भाग 8, पृ० 4318
10. अशोक का शिलालेख, पृ० 174(14) गिरिनार में।
11. Folklore includes folk are, folk crafts, folk tools, folk custom, folk custume, folk belief, folk medicine, folk recipes, folk music, folk dance, folk games, folk gestures and folk speech, as well as those verbal forms of expression which have been called folk literature but which are better described as verbal art Verbal art, which includes, such forms as folk tales, legends, myths, proverbs, riddles, and poetry, has been the primary concern of folk-lorists from both the humanities and the social sciences since the beginning of folklore as a field of study, and it is with this principal segment of folklore that this article of concerned.

European interest in folklore goes back at least to the sixteenth century and the age of exploration, but the modern study of folklore is generally considered to date from the early years of the nineteenth century, when the Grimm brothers began collecting german folktales in the field. The Folklore was first introduced in English in 1846 by William John Thoms, who urged that accounts of "manners, customs, observances, superstitions, bellads, proverbs, &c, of the olden time." be recorded in Britain for future study and for comparison with the materials which were being recorded in Germany by the Grimm brothers and other scholars."

—International Ency. of Social Science, Vol. 5, pp 496-497.

12. एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका, भाग 9, पृ० 444
13 हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, षोडश भाग, प्रस्तावना, पृ० 9
14. जनपद त्रैमासिक, अंक 1, पृ० 66
15. सम्मेलन त्रैमासिक, लोक संस्कृति विशेषांक, पृ० 65
16. लोके ख्यातिमुपागतान सकले लोकोक्तिरेषा यतो।
दग्धाना किल वह्निना हितकरः सेकोऽपि तस्योद्भवः ॥
—दे० संस्कृत लोकोक्ति संग्रह—पं० प्र० प्र० बाजपेयी, पं० भा० कृ० भट्ट, भूमिका।

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
18	9,10	इस प्रकार पढ़ें—नाभ्या आसीदन्तरिक्ष शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत । पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकां अकल्पयन् ॥	
21	20	ordspark	ordsprak
22	5	पुरपस्य	पुरुपस्य
22	11	वत	वत
22	12	जीवन्त मानन्दो	जीवन्तमानन्दो
22	19	पिण्डमुत्सज्य	पिण्डमुत्सृज्य
25	4	इसकी	इस
27	28	सारगभिता	सारगर्भितता
32	29	ग्रामीण क्षेत्र से इतर—यहां 'प्रश्न' शब्द न पढ़ें ।	
35	10	को	के
36	35	इस प्रकार पढ़ें—'सूच्यग्रं नैव दास्यामि बिना युद्धेन केशव ।'	
37	32	पक	पंक
41	5	फूलैडारि	फूलैफलैडारि
42	30	मक्षिप्तादि	संक्षिप्ततादि
46	14,16	क्षणेक मात्र	क्षणैकमात्रं
46	17,18	इस प्रकार पढ़ें—'वराटकान्वेषणे प्रवृत्तश्चितामणि लब्धवान्' ।	
46	21	घमेनाग्निरिवावृताः	धूमेनाग्निरिवावृताः
47	3	आमाणक	आभाणक
49	1	'कथावत'	'कथावत्'
51	21	सीलयित्वा	मीलयित्वा
51	33	यत्त पोटामतोन्ति	मत्त पोटा मत्तोन्ति
52	4	छायामिच्छद्दन्ति	छायामिच्छन्ति
53	9	उपदेशात्मक	उपदेशात्मकता

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
54	9	नैतिकता	व्यावहारिकता
57	13	ईदश	ईदृश
62	16	आदि कुछ	आदि के कुछ
62	26	गुण अभाव	गुण के अभाव
64	6	दूसपा	दूसरा
68	3	गह्यो	गह्यो
70	24	फरि	फेरि
73	23	प्रदर्शित	प्रदर्शन
74	10	पामरा	पामरो
75	4	शब्दो न्यूनाधिक्य	शब्दों का न्यूनाधिक्य
75	8	नाच	नाचै
76	1	जिव्हा	जिह्वा
78	8	Fraillty	Frailty
78	21	Wether	Wetter
78	22	da boa	da ba boa
78	25	EL melon, concer	EL Melon, conocer
79	1	इस प्रकार पढ़ें—'''पुरुषस्य भाग्य देवो न जानाति, कुतो मनुष्य ।	
79	27	यद	वेद
81	9	अविश्वास	विश्वास
89	27	यदि ह्यास्तितदन्यत्र	यदिहास्ति तदन्यत्र
101	11	पृष्ठ 136	पृष्ठ 137
104	25	मन्यत	मन्यते
106	12	पृष्ठ 613	पृ० 713
106	20	सन्दर्भ संख्या 144. Idiom को पंक्ति सं० 13 में सन्दर्भ के प्रारम्भ में पढ़ें।	
106	21	सन्दर्भ संख्या 145-146 के स्थान पर 145 पढ़ें।	
106,107—		सन्दर्भ संख्या 147-164 क्रमानुसार 146-163 पढ़ें।	
107	27	पृष्ठ 163	पृष्ठ 173
108	14	पृष्ठ 51	पृष्ठ 53
108	31	डॉ० ओमप्रकाश गुप्ता	डॉ० ओमप्रकाश गुप्त
112	34	पृष्ठ 19	पृष्ठ 16